मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 30 ● वर्ष 4 ● अंक 1–2 ● मार्च–अप्रैल 2014 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

16वाँ लोकसभा चुनाव : पंचवर्षीय ख़र्चीला पूँजीवादी जलसा!

वे अपना विकल्प चुन रहे हैं!
हमें अपना विकल्प चुनना होगा!

लेकिन भारत के मज़दूर वर्ग के सामने विकल्प क्या है?

16वें लोकसभा चुनाव होने जा रहे हैं। दुनिया के "सबसे बड़े लोकतन्त्र" का सबसे ख़र्चीला और दुनिया का दूसरा सबसे महँगा चुनाव होने जा रहा है! अगर ग़ैर-क़ानूनी ख़र्चों और कारपोरेट घरानों द्वारा पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों के प्रचार में ख़र्च की जाने वाली रक़म को जोड़ दिया जाये तो यह दुनिया का सबसे महँगा चुनाव है। लेकिन इन चुनावों में देश के मज़दूरों और आम मेहनतकशों के पास चुनने के लिए क्या है? लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रीय पार्टियाँ इस बार "विकास" की बीन बजा रही हैं। कांग्रेस जहाँ 'भव्य भारत निर्माण' की बात कर रही है, तो वहीं मोदी की फासीवादी लहर पर सवार भाजपा विकास के 'गुजरात मॉडल' की बात कर रही है। लेकिन अगर पिछले दस वर्षों की कांग्रेस-नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार और साथ ही पिछले लगभग पन्द्रह वर्षों से गुजरात में काबिज़ मोदी सरकार के राज्य में आम ग़रीब और मेहनतकश जनता के हालात पर निगाह डालें तो साफ़ हो जाता है कि कांग्रेस और भाजपा के 'विकास' का हम मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए क्या अर्थ है!

सही कहें तो कांग्रेस और भाजपा की बस भाषा ही अलग है। दोनों का 'विकास' का मॉडल बिल्कुल समान है। पूँजीपति वर्ग को हमेशा ही अपने हितों की सेवा करने के लिए कई बुर्जुआ पार्टियों की आवश्यकता होती है। कारण यह कि जनविरोधी और पूँजीपरस्त नीतियों को लागू करना हो तो एक पार्टी काफ़ी नहीं होती, क्योंकि पूँजीवादी संसदीय जनतन्त्र में कुछ वर्षों में ही जनविरोधी नीतियों पर अमल के कारण उसकी स्वीकार्यता और विश्वसनीयता कम होने लग जाती है। ऐसे में, हर पाँच या दस वर्ष बाद सरकार में एक पार्टी की जगह दूसरी और दूसरी की जगह कभी-कभी तीसरी पूँजीवादी पार्टी को सरकार में बिठाना पूँजीपति वर्ग के लिए ज़रूरी होता है। लेकिन इन सभी पार्टियों का मक़सद पूँजीवादी व्यवस्था में एक ही होता है : पूँजीपति वर्ग की सेवा करना! अगर कांग्रेस और भाजपा और साथ ही अन्य पूँजीवादी चुनावी पार्टियों की आर्थिक नीतियों पर एक निगाह डालें तो यह बात साफ़ हो जाती है।

● सम्पादक मण्डल

एक दशक की कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार ने मज़दूर वर्ग के साथ क्या सलूक किया?

अगर आज़ादी के बाद के पूरे इतिहास को छोड़ दें और कांग्रेस के पिछले 10 वर्ष के ही शासन को देखें तो हम क्या देखते हैं? 1991 में भारत में निजीकरण-उदारीकरण और श्रम के ठेकाकरण की नीतियों की बड़े पैमाने पर शुरुआत करने वाली कांग्रेस पार्टी ने 2004 से 2014 के बीच भी उन्हीं नीतियों को जारी रखा है। पिछले 10 वर्षों के दौरान देश में जमकर निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू किया गया और अम्बानी, टाटा, बिड़ला आदि जैसे बड़े पूँजीपतियों को देश की प्राकृतिक सम्पदा और साथ ही श्रम को लूटने की पूरी छूट दी गयी। इस लूट को क़ानूनी तौर पर भी इजाज़त दी गयी और ग़ैर-क़ानूनी तौर पर भी इसे मदद पहुँचायी गयी। जहाँ एक ओर लगातार श्रम क़ानूनों के विनियमन को ढीला किया गया, वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों की लूट में बाधा बनने वाले सभी नियम-कायदों को एक-एक करके तिलांजलि दे दी गयी। पिछले 10 वर्षों में ठेका मज़दूरी में जितनी तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है, उतनी भारत के इतिहास में किसी भी दशक में नहीं हुई है। जिन कार्यों में नियमत: ठेका मज़दूरों को नहीं रखा जा सकता है, उनमें भी बड़े पैमाने पर ठेका मज़दूरों की भर्ती की जा रही है। भारतीय रेलवे और दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन जैसे सरकारी प्रतिष्ठानों में भी सारे नियमों-कायदों को ताक पर रखकर नियमित प्रकृति के कामों में हज़ारों और लाखों की संख्या में ठेका मज़दूरों को रखा गया। कॉमनवेल्थ खेलों के दौरान दिल्ली में हुए निर्माण-कार्य में निर्माण मज़दूरों द्वारा गुलामों की तरह काम कराया गया। आज भी दिल्ली में एयरसिटी जैसी जगहों पर नारकीय दासत्व जैसी स्थितियों में ठेका मज़दूरों द्वारा काम करवाया जा रहा है। क्या कांग्रेस पार्टी की सरकार को यह पता नहीं है? ऐसा नहीं है! वास्तव में यह सब उन्हीं की इजाज़त से ही तो हो रहा है।

साम्राज्यवादी डाकुओं की बढ़ती लूट,
देशी पूँजीपतियों की फूलती थैलियाँ,
मेहनतकशों की बढ़ती तबाही,
बेरोज़गारी, आसमान छूती महँगाई,
ग़रीबी-भुखमरी, तबाही-बर्बादी,
काले क़ानून, लाठी-गोली का प्रजातंत्र,
बिकता न्याय, बढ़ते अपराध
लूटपाट, गुण्डागर्दी, बलात्कार
दलाली, कमीशनखोरी, भ्रष्टाचार,
मण्डल-कमण्डल, दंगे-फसाद,
भ्रष्ट सरकार, झूठी संसद, नपुंसक विरोध
इनसे निजात पाने की राह क्या है?
इलेक्शन या इंकलाब?

और यही नीतियाँ पिछले दस वर्षों में पूरे देश में लागू की गयी हैं।

कांग्रेस-नीत संप्रग सरकार ने मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना) का काफ़ी शोर मचाया था। लेकिन आज इसकी सच्चाई क्या है। मनरेगा के लिए सरकार द्वारा दिये जाने वाले पैसे में से लगभग आधा ख़र्च ही नहीं होता। जो आधा ख़र्च भी होता है, उसका बड़ा हिस्सा प्रधान, तहसीलदार, ब्लॉक डेवलपमेण्ट ऑफ़िसरों से लेकर निगरानी के लिए लगाये गये स्वयंसेवी संगठनों और एनजीओ के मालिक और प्रबन्धक खा जाते हैं। नतीजतन, गाँव के सर्वहारा वर्ग के पास इस योजना का कोई ख़ास लाभ नहीं पहुँचता; हाँ, गाँव के स्तर की सरकारी अफ़सरशाही की जेबें बेशक गर्म हो जाती हैं! साथ ही, जहाँ यह योजना कुछ बेहतर ढंग से लागू हुई भी है, वहाँ भी इसने ज़्यादा से ज़्यादा ग्रामीण मज़दूर को भुखमरी के स्तर पर जिलाये रखा है! सालभर में 100 दिनों के रोज़गार और प्रतिदिन 100 रुपये की दिहाड़ी से एक मज़दूर का परिवार क्या दो वक़्त खाना भी खा सकता है? यह गाँव के मज़दूरों के साथ एक भद्दा मज़ाक़ है।

अगर बेरोज़गारी की बात करें तो शहरों और गाँवों, दोनों में ही स्थिति लगातार भयंकर हुई है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के ताज़ा आँकड़ों के अनुसार 29 वर्ष की आयु तक की शहरी ग्रेजुएट आबादी में से करीब 17 फ़ीसदी बेरोज़गार है। अगर तमाम तकनीकी डिप्लोमा या सर्टिफ़िकेट अर्जित किये कुशल मज़दूरों की बात करें तो 29 प्रतिशत कुशल शहरी मज़दूर बेरोज़गार हैं। उसी प्रकार, डिप्लोमा प्राप्त औरत कुशल मज़दूरों में से करीब 17.3 प्रतिशत शहरी औरत मज़दूर बेरोज़गार हैं। पूरे देश में रोज़गार पैदा होने की दर कांग्रेस की सरकार के दौरान 0.8 प्रतिशत रही, जबकि देश की कार्यशक्ति में 1.5 प्रतिशत की दर से इज़ाफ़ा हुआ है। इस प्रकार वास्तविक रोज़गार पैदा होने की दर नकारात्मक है। ध्यान रहे कि बेरोज़गारी के इन आँकड़ों में केवल सरकारी परिभाषा वाली बेरोज़गारी को जोड़ा गया है। यानी कि "स्वरोज़गार" करके मुश्किल से कुपोषण और भुखमरी में जी पाने वाली एक विशाल मज़दूर आबादी को बेरोज़गारों में नहीं गिना गया है। उसके बाद भी बेरोज़गारी के ये आँकड़े चौंकाने वाले हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों के आकलन के अनुसार अगर बेरोज़गारों और अर्द्धबेरोज़गारों की कुल आबादी को जोड़ दें तो वह भारत में करीब 30 करोड़ के आस-पास बैठती है।

आम मेहनतकश आबादी को मिलने वाले पोषण के मामले में भी स्थिति पहले से ख़राब हुई है। ग़रीबी रेखा के पैमाने को नीचे करके कांग्रेस सरकार और उससे पहले भाजपा की सरकार ने लगातार ग़रीबी को कम करके दिखाने का प्रयास किया। लेकिन अगर ग़रीबी रेखा के मूल आँकड़े देखें तो हम क्या पाते हैं? शहरों में 2100 कैलोरी प्रतिदिन का पोषण नहीं पाने वाले लोगों की तादाद 1993-94 में 57 फ़ीसदी थी; 2004-05 में यह बढ़कर 64.5

(पेज 7 पर जारी)

कई राज्यों में चुनावी राजनीति का भण्डाफोड़ अभियान 5
मेहनतकशों के नायक भगतसिंह को चुराने की फासिस्टों की बदहवास कोशिशें 9
पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रिपोर्ट 10-11-12
केजरीवाल की आर्थिक नीति : जनता के नेता की बौद्धिक कंगाली या... 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

सी.सी.टीवी से मज़दूरों पर निगरानी

नरेला औद्योगिक क्षेत्र के डी-1546, 1547, 1548 में राकेश फुटवियर प्रा. लि. है। जिसे हिन्द प्लास्टिक के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ मज़दूरों से जानवरों-सा सलूक किया जाता है। इस कम्पनी में 500 से भी ज़्यादा लेबर काम करते हैं, जिसमें से मुश्किल से 10 का ही ई.एस.आई. कार्ड बना हुआ है। इस फ़ैक्टरी में 12-12 घण्टे काम लिया जाता है तथा कोई छुट्टी भी नहीं मिलती है। 12 घण्टे का मात्र 6000 रुपये महीना मिलता है। फ़ैक्टरी मालिक तो लेबर से मारपीट, गाली-गलौज भी करता है। मालिक बीजेपी से जुड़ा हुआ है। यह कम्पनी नरेला में पिछले 12 वर्षों से चल रही है, लेकिन किसी भी लेबर का पी.एफ़. नहीं कटता है और ना ही किसी त्योहार की छुट्टी मिलती है। फ़ैक्टरी में ईवा कम्पनी का चप्पल एवं जूता बनता है, जिसमें काफ़ी प्रदूषण होता है, जिससे मज़दूर टी.बी. एवं दमा के शिकार हो जाते हैं। 2007 में एक मज़दूर का हाथ कट गया था, उस मज़दूर का ई.एस.आई. लगवा कर छोड़ दिया गया और काम से भी निकाल दिया गया। फ़ैक्टरी में इतनी कड़ाई है कि एक लेबर दूसरे से बात नहीं कर सकता है। फ़ैक्टरी में तो मालिक ने सीसीटीवी भी लगा रखा है, जिससे वह मज़दूरों पर हर समय नज़र रखता है। ऐसा लगता है कि हम एक क़ैदख़ाने में काम करते हैं, ज़रा नज़रें उठायीं तो गाली-गलौज सुनो!

- प्रेमकुमार
नरेला औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली

किस आम आदमी की दुहाई दे रही हैं राजनीतिक पार्टियाँ!

आज की सुर्ख़ियों में एक ऐसी चीज़ ख़ास बनी हुई है, जो आज तक कभी ख़ास नहीं हुई। वो ख़ास चीज़ है 'आम आदमी'। भाजपा से लेकर कांग्रेस तक, सारी राजनीतिक पार्टियाँ आम आदमी की बात करने में लगी हुई हैं। पर सवाल यह उठता है कि यह 'आम आदमी' आख़िर है कौन? यह सबसे बड़ा सवाल है। चुनावबाज़ पार्टियाँ किसे आम आदमी कहती हैं और किस आम आदमी के स्वराज की बात करती हैं? चलिये इसकी जाँच-पड़ताल करते हैं।

आम आदमी से आजकल सबका मतलब है – मध्यवर्ग। अब आप कहेंगे कि इसमें वर्ग कहाँ से आ गये, आम आदमी तो सभी हैं, बस अमीरों को छोड़कर। तो चलिये आप बताइये, क्या आप उसे आम आदमी कहेंगे, जिसके पास अपना एक फ़्लैट है, उसमें एसी लगा है, 60 हज़ार रुपया कमाता है और एक कार ख़रीद रखी है। तो आप कहेंगे – नहीं, उसके पास तो सारी सुख-सुविधाएँ हैं, तो वो आम आदमी कैसे हो सकता है! हाँ, आपने सही बात कही। पर आजकल के समाज में आपको ग़लत ठहराया जायेगा, क्योंकि उस आदमी को भी महँगाई, भ्रष्टाचार से जूझना पड़ रहा है। उसने भी सरकार से उम्मीदें लगा रखी हैं कि सरकार उसके लिए कुछ करेगी, तो देखा जाये तो वो भी आम आदमी है।

फिर आप कहेंगे कि निम्नवर्ग भी तो आम आदमी में आता है। अगर मध्यवर्ग का विकास होगा तो निम्नवर्ग का भी तो विकास होगा। चलिये अब चुनावी पार्टियों की राजनीति के बारे में जानते हैं, जिससे आप भी समझ जायेंगे कि सिर्फ़ मध्यवर्ग ही आम आदमी है, ना कि निम्नवर्ग। और विकास भी मध्यवर्ग और और उच्चवर्ग का ही होता है।

राजधानी की 'आम आदमी पार्टी' (आप) का उदाहरण लेते हैं, जिसका घोषणापत्र राजनीतिक क्रान्ति की और आम आदमी के विकास की बात करता है। कांग्रेस और भाजपा की राजनीति तो पूरे देश के सामने नंगी हो चुकी है, इसलिए उनके बारे में बात नही करेंगे।

'आप' भ्रष्टाचार मुक्त भारत का नारा देकर सत्ता में आयी और उसके वादों ने राजनीतिक क्रान्ति का सन्देश दिया। 'आप' के घोषणापत्र पर थोड़ा नज़र डालते हैं और देखते हैं कि इसमें निम्नवर्ग यानी मज़दूरों व आम मेहनतकश जनता के हित में कितनी बातें हैं और वे भ्रष्टाचार किसे कहते हैं? सबसे पहले 'आप' भ्रष्टाचार कहती किसे है? उनके अनुसार – कोई आदमी रिश्वत देता है या लेता है तो वह भ्रष्टाचार है। वो सिर्फ़ रिश्वतखोरी को ही भ्रष्टाचार मानते हैं। 'आप' सिर्फ़ इसी भ्रष्टाचार को मिटाने की बात करती है, क्योंकि यही सबसे बड़ा भ्रष्टाचार है, उनके और मध्यवर्ग के अनुसार। अब हम जानते हैं कि सबसे बड़ा भ्रष्टाचार क्या है? एक मज़दूर फ़ैक्टरी में 8-12 घण्टे काम करता है और उसे न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती, उसे फ़ण्ड-बोनस, ईएसआई या अन्य कोई भी सुविधा नहीं मिलती और उसे कभी भी काम से निकाला जा सकता है। क्या ये सबसे बड़ा भ्रष्टाचार नहीं है?

'आप' इस भ्रष्टाचार को ख़त्म करने की बात क्यों नहीं करती? वह तो केवल मध्यवर्ग के विकास की बातें करती है। वे सबको 700 लीटर पानी देने का वायदा करते हैं। पर वहाँ जहाँ पानी के मीटर लगे हुए हैं और पानी के मीटर तो सिर्फ़ दिल्ली के 40 फ़ीसदी घरों में ही लगे हैं, वे भी मध्यवर्ग के लोग हैं।

भ्रष्टाचार तो सड़ रहे पेड़ का पत्ता है, अगर पेड़ को सड़ने से बचाना है, तो हमें जड़ से उसे सही करना होगा और जड़ तो पूँजीवाद है। मान लीजिये, अगर भारत से भ्रष्टाचार मिट भी जाये तो उससे जो हर रोज़ 3000 बच्चे कुपोषण से मरते हैं, उनका क्या फ़ायदा होगा? आज़ादी के बाद भी किसान आत्महत्या कर रहे हैं, यह भ्रष्टाचार ख़त्म होने से कैसे रुकेगा? भारत में 30 करोड़ लोग झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं और 84 करोड़ जनता की बुनियादी ज़रूरतें (रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य) पूरी नहीं हो पा रही हैं। इन आँकड़ों से आप समझ ही गये होंगे कि ये आँकड़े मध्यवर्ग नहीं, निम्नवर्ग के आँकड़े हैं, जिसके विकास के लिए किसी चुनावबाज़ पार्टी के पास कोई योजना नहीं है।

अगर भ्रष्टाचार मिट भी गया (वैसे जब तक पूँजीवाद ख़त्म नहीं होता, भ्रष्टाचार तो रहेगा ही) तो क्या फ़ायदा। उसका फ़ायदा तो केवल मध्यवर्गीय लोगों को ही होगा जो आम आदमी हैं, उस निम्नवर्ग को नहीं, जो मेहनतकश है।

- भारत
सूरजपार्क, बादली, दिल्ली

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

आप यहाँ देख सकते हैं: **www.mazdoorbigul.net**

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्त्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

घोषणापत्र का प्रपत्र : प्रपत्र 4
(नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	पाँच रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	मल्टीमीडियम, 310, संजयगांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ-226016
सम्पादक का नाम	सुखविन्दर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
स्वामी का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय

मैं कात्यायनी सिन्हा, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
(कात्यायनी सिन्हा)
प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273009**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09971158783**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

मज़दूर संगठनकर्ता राजविन्दर को लुधियाना अदालत ने एक फर्जी मामले में दो साल क़ैद की सज़ा सुनायी

विशेष संवाददाता

26 फ़रवरी 2014 को लुधियाना ज़िला अदालत ने एक फ़ैसले में राजविन्दर और गौरी शंकर नाम के एक रिक्शा चालक को दो-दो साल क़ैद और हज़ार-हज़ार रुपये जुर्माने की सज़ा सुनायी है। इनका दोष यह था कि इन्होंने एक फ़ैक्टरी में ब्वायलर विस्फोट होने के बाद ध्वस्त हुई फ़ैक्टरी इमारत के मलबे से दबे हुए मज़दूरों को निकालने के लिए आवाज़ उठायी थी। राजविन्दर इस समय टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब (रजि.) के अध्यक्ष हैं और बिगुल संवाददाता भी हैं। दोनों की जमानत करवायी गयी है और इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ हाईकोर्ट में अपील की गयी है।

वर्ष 2008 की 21 अप्रैल की शाम को साढ़े सात बजे लुधियाना के टिब्बा रोड पर स्थित वीर गारमेण्ट नामक एक डाइंग कारख़ाने में ब्वायलर फटा था जिसके कारण कारख़ाने की इमारत मलबे का ढेर बन गयी थी। सूचना मिलने पर राजविन्दर घटना-स्थल पर पहुँचे। वहाँ जमा हुए लोगों के बताने के मुताबिक़ यह हादसा कारख़ाना मालिक की लापरवाही के कारण हुआ था। मामले को दबाने के लिए मालिक ने किसी भी सरकारी विभाग में सूचना तक नहीं दी। वहाँ पर सिर्फ़ स्थानीय पुलिस चौकी के मुलाज़िम थे जो मालिक का सरेआम साथ देते हुए लोगों को भगा रहे थे। वहाँ मौजूद मज़दूरों का कहना था कि उस कारख़ाने में 15 मज़दूर काम कर रहे थे जिनमें से दो बच्चे (उम्र 12 से 13 साल) और तीन अन्य मज़दूर ज़ख़्मी हालत में मुहल्ले के लोगों द्वारा एक अस्पताल में दाख़िल कराये गये थे। उस कारख़ाने के एक मज़दूर ने बताया कि वह और एक अन्य मज़दूर चाय पीने बाहर आये थे इसलिए बच गये। लेकिन जब उससे पूछा गया कि कारख़ाने के अन्दर कितने लोग मौजूद थे तब उसने कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया और घबरा गया। ज़ाहिर था कि वह मालिक के दबाव में था। घटना के कुछ देर बाद ही मालिकों की यूनियन डाइंग एसोसिएशन के सदस्य फ़ैक्टरी मालिक भी वहाँ पहुँच गये थे। वे भी लोगों को वहाँ से हटने के लिए कह रहे थे। इससे शक और भी पुख्ता होता था कि अगर 15 मज़दूर काम करते थे, लेकिन उसमें से सिर्फ़ सात के बारे में ही जानकारी मिल रही थी तो बाक़ी आठ कहाँ गये? वहाँ इकट्ठा लोगों का कहना था कि मलबा हटाया जाना चाहिए, ताकि अगर कोई दबा हो तो उसे बचाया जा सके।

इसी के अगले दिन 22 अप्रैल को उच्च अधिकारियों की मौजूदगी में और स्थानीय लोगों की मदद से जल्दी मलबा हटाने की माँग कर रहे राजविन्दर को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। इस कार्रवाई का लोगों ने विरोध किया। इस पर पुलिस ने भारी लाठीचार्ज किया और लोगों को वहाँ से खदेड़ दिया। घटना के दो दिन बाद राजविन्दर को संगीन धाराएँ – 307, 382, 392, 323, 324, 427 आदि लगाकर जेल भेज दिया। एक रिक्शा चालक गौरीशंकर, जो वहाँ लोगों को पानी पिला रहा था, उसे भी आरोपी बनाया गया। गौरीशंकर को मालिक द्वारा मारने के इरादे से बुरी तरह पीटा गया था और मरा समझकर खेतों में फेंक दिया था। कुछ और भी लोगों पर यह झूठा केस डाल दिया गया। इस केस को पुलिस ने डाकाज़नी की वारदात बनाकर पेश किया। कहा गया कि राजविन्दर अपने साथियों सहित कारख़ाने में डाका डालने आया था। कारख़ाना मालिक के दोस्त के रोकने पर उस पर हमला किया, लोहे की छड़ से उसकी गाड़ी का शीशा तोड़कर पचास हज़ार कैश वाला बैग लेकर भाग गया। पुलिस ने कहानी बनायी कि इस डाके के लगभग पाँच घण्टे बाद विजय नगर चौक के नाके से मालिक की निशानदेही पर राजविन्दर को गिरफ़्तार किया गया और उससे लूटा हुआ सामान बरामद किया गया।

ग़ौरतलब है कि ब्वायलर विस्फोट की घटना और अगले दिन राजविन्दर की गिरफ़्तारी की अख़बारों और टी.वी. चैनलों में ख़बरें आयी थीं। इनमें भी डाके की कोई बात नहीं कही गयी थी और घटना-स्थल पर ही सैकड़ों लोगों के बीच राजविन्दर की गिरफ़्तारी के बारे में लिखा गया था। बचाव पक्ष के वकील ने भी लुधियाना सेशन कोर्ट के सामने ये तथ्य रखे थे कि पुलिस एफ़.आई.आर. में साढ़े नौ बजे की गिरफ़्तारी दिखायी गयी थी। सारे चश्मदीद गवाहों, जिसमें खुद वीर डाइंग का मालिक भी था, ने राजविन्दर को घटना-स्थल से ही साढ़े चार बजे गिरफ़्तार करने का बयान दिया था। टूटी गाड़ियों की मरम्मत के बिल जो पुलिस ने पेश किये वे भी 20-21 दिन पहले 30 मार्च के थे। केस फ़ाइल में टूटी गाड़ियों और भीड़ की जो तस्वीरें लगायी गयी थीं, उनमें न तो किसी गाड़ी का शीशा टूटा था, जिसमें से हाथ डालकर बैग निकाला जा सके और न ही तथाकथित हमलावरों के चेहरे दिखायी दे रहे थे। जो फोटोग्राफर गवाह के बतौर पेश किया गया उसने कहा ये तस्वीरें उसने दोपहर लगभग एक बजे खींची थीं जबकि विवाद चार बजे हुआ था। इस तरह के कई और तथ्य थे जिनसे अदालत के सामने भी यह स्पष्ट था कि यह मामला फ़र्ज़ी है।

लेकिन जज ने बचाव पक्ष की किसी भी दलील को ध्यान में नहीं रखा। उसने 307 और 302 धाराओं के तहत दो-दो साल क़ैद और पाँच-पाँच सौ रुपये जुर्माने की सज़ा सुनायी। इस मामले में सबसे बड़ा आघात गौरीशंकर को पहुँचा जिसका दोष इतना था कि वह हादसा स्थल पर लोगों को पानी पिला रहा था। उसका घर घटना स्थल के पास ही है। उस पर भी पुलिस ने डाकाज़नी, कत्ल का इरादा, तोड़फोड़ आदि धाराएँ लगायी थीं। इस बेबुनियाद मामले में राजविन्दर और गौरीशंकर को एक महीना जेल में भी काटना पड़ा था। विभिन्न जनसंगठनों द्वारा चलाये गये संघर्ष के दबाव में उनकी एक महीने बाद ज़मानत हो पायी थी। पिछले पाँच साल और दस महीनों में उन्हें अदालतों के असंख्य चक्कर लगाने पड़े। जज के फ़ैसले के बाद बचाव पक्ष के वकील ने पुनर्विचार करने के लिए अपील की तो जज ने कहा – "वकील साहिब, हमारी भी कुछ मजबूरियाँ हैं। आप हाईकोर्ट में अपील कर लो, मामला निपट जायेगा"!!

अदालत के इस फ़ैसले से कुछ बातें एक बार फिर साफ़ हो गयीं। अगर मुद्दा मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच टकराव का हो तो मज़दूरों को सबक सिखाने के लिए उनके ख़िलाफ़ ही फ़ैसले सुनाये जाते हैं ताकि वे भविष्य में मालिकों से टक्कर लेने की न सोचें। जज-अफ़सर भी तो अपने "सगे-सम्बन्धी" पूँजीपतियों का ही पक्ष लेंगे। इनके अपने भी तो कारख़ाने आदि होते हैं। ये कभी नहीं चाहेंगे कि मज़दूर मालिकों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायें। पंजाब में तो पिछले समय में मज़दूरों, किसानों, अध्यापकों, बिजली मुलाज़िमों के संगठनों के नेताओं को झूठे केसों में फँसाकर उलझाये रखने का रुझान बहुत बढ़ चुका है। मज़दूर संगठनकर्ता राजविन्दर को सुनायी गयी सज़ा भी सरकार की इसी रणनीति का हिस्सा है।

पिछले दिनों लुधियाना के एक बड़े अस्पताल डी.एम.सी. के 22 कर्मचारियों को तीन-तीन साल की सज़ा सुनायी गयी है। सन् 2002 में डी.एम.सी. में चली साढ़े तीन महीने की हड़ताल के दौरान इन मुलाज़िमों पर हत्या का प्रयास, तोड़फोड़ जैसे संगीन दोष लगाकर झूठा केस बनाया गया था। दूसरी बात, अदालतें ग़रीबों और मज़दूरों के प्रति पूर्वाग्रहों की शिकार हैं कि उनमें तो अपराधी प्रवृत्तियाँ होती ही हैं और इनको ठीक करने के लिए जेलों में ठूँसकर "सुधारा" जाना चाहिए। गुड़गाँव में मारुति सुज़ुकी के 147 मज़दूर हर क़ानून को धता बताकर पिछले दो वर्ष से जेल में रखे गये हैं और उनकी ज़मानत तक नहीं होने दी जा रही है। इसके अलावा, ऊपर से नीचे अदालतों में फैले भ्रष्टाचार के बारे में तो सब जानते ही हैं।

कहने को क़ानून की निगाह में सब बराबर हैं, लेकिन सच यही है कि न्याय भी यहाँ पैसे पर बिकता है। भारतीय न्याय व्यवस्था का असली तराज़ू ऐसा ही है जो अमीरों के लिए अलग और ग़रीबों के लिए अलग न्याय तौलता है।

ओरियण्ट क्राफ़्ट में फिर मज़दूर की मौत और पुलिस दमन
गारमेण्ट उद्योग के मज़दूरों के बर्बर शोषण की तस्वीर

बिगुल संवाददाता

गुड़गाँव स्थित विभिन्न कारख़ानों में आये दिन मज़दूरों के साथ कोई न कोई हादसा होता रहता है। परन्तु ज़्यादातर मामलों में प्रबन्धन-प्रशासन मिलकर इन घटनाओं को दबा देते हैं। मौत और मायूसी के इन कारख़ानों में मज़दूर किन हालात में काम करने को मजबूर हैं, उसका अन्दाज़ा उद्योग विहार इलाक़े में ओरियण्ट क्राफ़्ट कम्पनी में हुई हाल की घटना से लगाया जा सकता है। 28 मार्च को कम्पनी में सिलाई मशीन में करण्ट आने से एक मज़दूर की मौत हो गयी और चार अन्य मज़दूर बुरी तरह घायल हो गये। ज़्यादातर मज़दूरों का कहना था कि घायल लोगों में से एक महिला की भी बाद में मौत हो गयी। लेकिन इस तथ्य को सामने नहीं आने दिया गया।

कम्पनी में टेलरिंग का काम करने वाला सुनील काम करते समय मशीन में करण्ट आने से बुरी तरह घायल हो गया। अन्य मज़दूर बेहोश सुनील को उठाकर कम्पनी की डिस्पेंसरी में ले गये, पर वहाँ भी उसकी जान बचाने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाये गये। आधे घण्टे बाद सुनील को एम्बुलेंस से अस्पताल भेजा गया, जहाँ उसे मृत घोषित कर दिया गया। कम्पनी प्रबन्धन ने मज़दूरों को बताया कि सुनील की मौत हृदयगति रुकने से हुई है, लेकिन इस पूरे मामले में कम्पनी के ग़ैरज़िम्मेदार रवैये के कारण पहले से ही नाराज़ मज़दूर यह बात सुनकर मृत शरीर को उनके हवाले करने की माँग करने लगे।

मैनेजमेण्ट सुनील के मृत शरीर को उसके परिवार को सौंपने से मना कर रहा था और इसे अब भी हृदयाघात के कारण मौत बताकर मामला रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिश की जा रही थी। जब पोस्टमार्टम की रिपोर्ट से साफ़ हो गया कि मौत हृदयाघात से नहीं, बल्कि बिजली का करण्ट लगने से हुई है तो मैनेजमेण्ट के इस रवैये के विरोध में मज़दूर काम बन्द करके बाहर सड़क पर आ गये और मृतक के शरीर को उसके परिवार को सौंपने की माँग करते हुए धरने पर बैठ गये। इसी बीच मैनेजमेण्ट ने पुलिस बुला ली जिसने धरना दे रहे मज़दूरों पर जमकर लाठियाँ भाँजी और आँसू गैस के गोले दागे। पुलिस इतने पर ही नहीं रुकी, बल्कि कम्पनी और मैनेजमेण्ट के प्रति पूरी वफ़ादारी दिखाते हुए निहत्थे मज़दूरों पर फ़ायरिंग भी की। इस कार्रवाई में कई मज़दूरों को चोटें आयीं और दो मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हुए।

मज़दूरों ने बताया कि इस तरह की यह कोई पहली घटना नहीं थी, बल्कि हर महीने ऐसी दो या तीन घटनाएँ होती रहती हैं, लेकिन उन्हें कम्पनी के अन्दर ही दबा दिया जाता है। यह घटना सबके सामने आ गयी, क्योंकि मज़दूरों ने सड़क पर विरोध प्रदर्शन किया। ओरियण्ट क्राफ़्ट के अन्दर मज़दूरों की सुरक्षा के लिए कोई इन्तज़ाम नहीं हैं और मज़दूर जिन मशीनों पर काम करते हैं, उनमें से ज़्यादातर मशीनों में करण्ट आता है। इसकी शिकायत करने पर सुपरवाइज़र गाली-गलौज कर मज़दूरों को वापस काम पर जाने के लिए दबाव बनाते हैं, और मैनेजमेण्ट इस पर कोई ख़ास ध्यान नहीं देती। कम्पनी में स्थित डिस्पेंसरी भी बस खानापूरी के लिए चलायी जा रही है, जहाँ सिर्फ़ एक अनट्रेण्ड कम्पाउण्डर बैठता है जो हरेक बीमारी की एक ही दवा देता रहता है।

पुलिस-प्रशासन और कम्पनियों के मैनेजमेण्ट की मिलीभगत भी इस घटना से सामने आयी। मज़दूर की मौत के कारणों की कोई जाँच-पड़ताल नहीं की गयी लेकिन पुलिस ने विरोध करने वाले मज़दूरों को दोषी ठहराकर कई मज़दूरों के ख़िलाफ़ एफ़.आई.आर. दर्ज कर दी, जिसमें कई महिला मज़दूरों के नाम भी शामिल हैं। घटना के अगले दिन सुबह जब मज़दूरों ने कम्पनी के सामने धरना देने की कोशिश की तो पुलिस ने फिर लाठीचार्ज कर उन्हें खदेड़ दिया। न्याय माँग रहे मज़दूरों के दिलों में ख़ौफ़ पैदा करने के लिए मैनेजमेण्ट और प्रशासन ने मिलकर कम्पनी के आस-पास की सभी दुकानों और दूसरी कम्पनियों को भी बन्द करा दिया था, और बड़ी संख्या में पुलिस पूरे क्षेत्र में मौजूद थी। मज़दूरों को आतंकित करने के लिए दूसरे दिन कुछ मज़दूरों को पुलिस पर हमला करने की धाराएँ लगाकर गिरफ़्तार भी कर लिया गया, जिनमें महिलाएँ भी शामिल हैं। लेकिन कम्पनी मैनेजमेण्ट पर न तो कोई केस दर्ज किया गया और न ही कोई कार्रवाई हुई।

ओरियण्ट क्राफ़्ट देश की सबसे बड़ी कपड़ा निर्यातक कम्पनी है, जो टॉमी हिलफ़िगर, डीकेएनवाई, मार्क एण्ड स्पेंसर, फ़िच जैसे महँगे विदेशी ब्राण्डों के लिए कपड़े बनाती है। पूरे एन.सी.आर. क्षेत्र में कम्पनी के कुल 22 कारख़ाने हैं, जिनमें तकरीबन

(पेज 6 पर जारी)

कारख़ाना इलाक़ों से

मालिकों के मुनाफ़े की हवस में अपाहिज हो रहे हैं मज़दूर

अर्जुन कुमार की उम्र बड़ी मुश्किल से 18–19 साल की है। मूल रूप में सहरसा, बिहार का रहने वाला है। परिवार में पाँच बहन–भाइयों में से दूसरे नम्बर पर है। परिवार की मदद करने के लिए पढ़ाई बीच में छोड़कर पैसा कमाने लुधियाना आया था। पहले अमृतसर में लक्ष्मी स्पिनिंग, डायमण्ड धागा मिल में कुछ समय काम किया, फिर अपनी जान–पहचान के लोगों के पास लुधियाना के मेहरबान इलाक़े में रहने लगा और बाजड़ा रोड पर स्थित के. डी.एम. धागा फ़ैक्टरी में काम करने

लगा। फ़ैक्टरी में काम करते हुए अर्जुन को 8 महीने हो गये थे, लेकिन 18 नवम्बर 2013 को दिन के समय अचानक मशीन पर काम करते समय अर्जुन का दाहिना हाथ कार्ड मशीन में आकर कट गया। तड़पते हुए अर्जुन को फ़ैक्टरी के साथियों ने कालड़ा अस्पताल पहुँचाया, मालिक भी अस्पताल पहुँच गया। उसने अर्जुन से कहा कि बेटे घबराना नहीं, मैं तुम्हारा ई.एस.आई. कार्ड बना देता हूँ, तुम्हारा मुफ़्त इलाज होगा। तुझे एक लाख रुपया दूँगा और तेरी पेंशन भी लगा दूँगा। ज़ख़्म ठीक होने पर तू फ़ैक्टरी में काम पर आने लग जाना। जो तू कर सकेगा, वही काम करने के लिए दूँगा, लेकिन कोई मुक़द्दमा न करो।

इस तरह अर्जुन का इलाज हुआ, ज़ख़्म ठीक होने तक एक बार मालिक ने कुछ पैसा ख़र्च भी किया, परन्तु बाक़ी खाने–पीने का सारा ख़र्च अर्जुन के साथियों ने ही किया। जब अर्जुन काम करने के लिए फ़ैक्टरी गया तो गेट पर उसे कह दिया गया कि उसे काम पर नहीं रखा जायेगा। जब अर्जुन ने मालिक के किये वायदे की बात की और मालिक से मिलने की ज़िद की तो उसे मालिक के दफ़्तर भेज दिया गया। मालिक ने भी उसको वही कुछ कहा जो गेटमैन ने कहा था। लेकिन इतनी बात मालिक ने और जोड़ दी कि तुझे कोई पैसा नहीं मिलेगा, बस जो कर दिया बहुत है। परन्तु जब अर्जुन ने ई.एस.आई. द्वारा छुट्टियों के पैसे मिलने की बात की तो मालिक ने फ़ार्म पर दस्तख़त करने से भी मना कर दिया और धमकाकर फ़ैक्टरी से भगा दिया और कहा कि जहाँ मर्जी चला जा, तुझे एक पैसा भी नहीं दूँगा। उधर कालड़ा अस्पताल से उसे इलाज के काग़ज़ नहीं मिल रहे, क्योंकि मालिक ने अस्पताल वालों को मना कर दिया है, जिससे वह आगे कार्यवाही न कर सके।

अर्जुन ने बताया कि जिस फ़ैक्टरी में वह काम करता था, उसमें 35–40 लोग काम करते हैं, परन्तु उस फ़ैक्टरी में ई.एस.आई, ई.पी.एफ़, हाज़िरी रजिस्टर, हाज़िरी कार्ड, फ़ैक्टरी पहचान पत्र, सालाना छुट्टियाँ, सालाना बोनस आदि कोई भी सुविधा नहीं मिलती। और तो और सुरक्षा का आलम यह है कि जिस कार्ड मशीन में आकर उसका हाथ कटा, उसका सुरक्षा कवर तक मालिक ने हटवा दिया है। कार्ड मशीन में अलग–अलग तरह की रुई मिलाकर मोटी पूनी बनायी जाती है, जिससे आगे वाली मशीन में धागा बनता है। इस मशीन के रूलों में रुई जमा हो जाती है, जिसके चलते उसे साफ़ करना पड़ता है। यदि कवर लगा हो तो कवर उतारने में समय लगता है। इसलिए समय बचाने के लिए अक्सर मालिक कवर हटवा देते हैं और अर्जुन जैसे मज़दूर अक्सर ही अपाहिज होकर ठोकरें खाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह सिलसिला बदस्तूर जारी है। अब अर्जुन भविष्य के प्रति चिन्तित है कि उसका दाहिना हाथ कट जाने के बाद कोई मालिक उसे काम नहीं देगा। जिस मालिक की मुनाफ़े की हवस के कारण वह अपाहिज हुआ, वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं।

ऐसी ही एक और घटना ओम प्रकाश के साथ घटी। ओम प्रकाश की भी दाहिने हाथ की सबसे छोटी उँगली समेत साथ लगती तीन उँगलियाँ कार्ड मशीन में कट गयीं। मूल रूप से ओम प्रकाश आरा, बिहार का रहने वाला है। उम्र मुश्किल से कोई 25–26 साल है। ओम प्रकाश विवाहित है। उसके पिता की मौत हो चुकी है, बड़ा भाई मन्दबुद्धि है। इसलिए घर में कमाने वाला ओम प्रकाश ही था। लगभग दस साल पहले वह लुधियाना आया था। उसने शक्ति स्पिनिंग मिल्ज, बाजड़ा रोड, एन.बी.आर. सीड़ा रोड, बी.आर. सीड़ा रोड, कुन्दन धागा मिल, ट्रांसपोर्ट नगर जैसे कई कारख़ानों में काम किया है और अब श्रीनाथ स्पिनिंग मिल प्राइवेट लिमिटेड, बाजड़ा रोड में काम कर रहा था। इस फ़ैक्टरी में भी धागा बनता है और लगभग 50 आदमी काम करते हैं। बाक़ी फ़ैक्टरियों की ही तरह इस फ़ैक्टरी में भी कोई श्रम क़ानून लागू नहीं है। रुई से पूनी बनाने वाली कार्ड मशीन में आने की वजह से ही ओम प्रकाश की उँगलियाँ कट गयी थीं। यहाँ भी सुरक्षा कवर न होने के कारण ही ओम प्रकाश का हाथ रूले में चला गया।

ज़ख़्मी हालत में ओम प्रकाश को पाहवा अस्पताल, गिल रोड में दाख़िल करवाया गया, साथ की साथ मालिक ने ई.एस.आई. कार्ड बनवाकर ई.एस.आई. से इलाज चालू करवा दिया। ओम प्रकाश को भरोसा दिलाया कि उसे काम के अलावा पेंशन और हर्जाने के तौर पर 1 लाख रुपये भी दिये जायेंगे, लेकिन वह कोई मुक़द्दमा न करे। ऑपरेशन के दौरान दोनों जाँघों से माँस निकालकर हाथ की सर्जरी की गयी, कुछ दिनों बाद उसे पाहवा अस्पताल से छुट्टी मिल गयी। ई.एस.आई. ने छुट्टी काटकर आराम के लिए भी कह दिया। इन दिनों में छुट्टी का पैसा ई.एस.आई. विभाग ने देना था। पन्द्रह दिनों बाद मालिक ने सन्देश भेजकर ओम प्रकाश को फ़ैक्टरी काम करने के लिए बुलाया। जिस पर ओम प्रकाश ने जाकर बताया कि उसके जाँघों और हाथ के ज़ख़्म हरे हैं, वह काम नहीं कर सकेगा। इस पर मालिक नहीं माना और उसे चौकीदारी करने के लिए कहा, जैसे–तैसे कर उसने 10 दिन ड्यूटी की। जब उसने मालिक से पैसे माँगे तो मालिक ने हिसाब करके उसे 810 रुपये दे दिये और कहा कि तुम्हारा 10 दिनों का यही बनता है। अगर काम करना है तो इतना ही मिलेगा। इसके बाद ओम प्रकाश ने पेंशन, छुट्टियों के पैसे निकलवाने के लिए और हर्जाना के पैसों की बात की तो उसे लुधियाना के कारख़ाना मालिकों का स्थापित डायलॉग सुना दिया गया कि "जिसके पास जाना है चला जा, जो करना है कर ले, अब तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा।" अब ओम प्रकाश कभी ई.एस.आई. के मुख्य दफ़्तर, भारत नगर का चक्कर लगाता है, कभी उप–दफ़्तर राहों रोड जाता है। कभी मालिक के 'ख़ास' बन्दों (मैनेजरों–सुपरवाइज़रों) की मिन्नतें करता फिरता है।

ये कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जो सामने आ गयी हैं। लेकिन अक्सर ही फ़ैक्टरियों में हादसे होते हैं, मौतों के अलावा अंग कटने की घटनाएँ आम घटती हैं। लेकिन किसी अख़बार या टी.वी. चैनल की सुर्खी नहीं बनती। यहाँ का श्रम विभाग और ई.एस.आई. विभाग अपाहिज, लाचार, मज़दूरों की सुनवाई करके ज़ख़्मों पर मरहम लगाने की जगह उनको चक्कर लगवा–लगवाकर दुखी कर देता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि इनकी कोई जवाबदेही नहीं। मज़दूरों में संगठन की कमी है और फ़ैक्टरी मालिक ऊपर तक पहुँच वाले हैं।

– बिगुल संवाददाता

मज़दूर बस्तियों से

करावल नगर मज़दूर यूनियन ने दो दिवसीय मेडिकल कैम्प अयोजित किया।

बिगुल संवाददाता

दिल्ली के करावल नगर क्षेत्र की मज़दूर आबादी के बीच करावल नगर मज़दूर यूनियन व नौजवान भारत सभा द्वारा दो दिवसीय (1 व 2 मार्च) नि:शुल्क मेडिकल कैम्प आयोजित किया गया। डॉक्टरों व शुभचिन्तक नागरिकों की मदद से जुटायी गयी दवाएँ भी मरीजों को नि:शुल्क दी गयीं। डॉक्टरों की टीम में सरकारी अस्पताल के डॉ. ऋषि व सतेन्दर पाल ने वालण्टियरी सेवा दी। कैम्प के दौरान डाक्टरों की टीम ने मरीजों की जाँच के साथ ही लोगों को बीमारियों से बचने के उपाय भी बताये। कैम्प में आने वाले लोगों को वहाँ मौजूद कार्यकर्ताओं ने स्वास्थ्य अधिकारों के बारे में भी बताया। इस मेडिकल कैम्प में लगभग 500 मरीजों की जाँच की गयी। इनमें ज़्यादातर महिला बादाम मज़दूर व बच्चे ही थे जिनमें मुख्य बीमारियों में रक्त की कमी, कुपोषण, साँस से सम्बन्धित बीमारियाँ व त्वचा से सम्बन्धित बीमारियाँ थीं। असल बात यह है इन सब बीमारियों के पीछे की मूल वजह पेशागत परिस्थितियाँ हैं, क्योंकि बादाम के कारख़ानों में मुख्यत: महिला मज़दूर काम करती हैं, जिन्हें 12–14 घण्टे काम करने पर भी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने लायक वेतन नहीं मिलता। इन कारख़ानों में न तो साफ़ पीने के पानी की सुविधा होती है, न महिलाओं के लिए अलग शौचालय की। बादाम तोड़ते वक़्त धूल उड़ती है, जिससे साँस की बीमारियाँ होती हैं। बच्चों के लिए भी वहाँ कोई सुविधा नहीं होती। सिर्फ़ कारख़ानों में ही नहीं, इलाक़े में भी साफ़ पानी से लेकर आवास तक की तमाम समस्याएँ हैं। एक तरफ़ कारख़ानों में धूल से लेकर गन्दे पानी की वजह से साँस सम्बन्धित और पेट की बीमारियाँ होती हैं, दूसरी तरफ़ इलाक़े में गन्दे पानी व बस्तियों में गन्दगी की वजह से त्वचा से जुड़ी बीमारियाँ होती हैं। नाम–मात्र वेतन की वजह से दो वक़्त का पोषक खाना भी न मिल पाने के कारण महिलाएँ व बच्चे रक्त की कमी व कुपोषण का शिकार होते हैं।

साफ़ है कि करावल नगर मज़दूर यूनियन द्वारा आयोजित कैम्प का मक़सद झोला–छापा डॉक्टर व मुनाफ़े का धन्धा चलाने वाले डॉक्टरों के बरक्स जनता की पहलक़दमी पर जन–स्वास्थ्य सेवा को खड़ा करना है। यूनियन के नवीन ने बताया कि असल में स्वास्थ्य–शिक्षा–आवास–रोज़गार सरकार की बुनियादी ज़िम्मेदारी होनी चाहिए, लेकिन मुनाफ़े और लूट पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में ये भी एक बाज़ारू माल बना दिया जाता है और पूँजीपति इसे बेचकर मुनाफ़ा पीटता है। इसलिए मज़दूरों को अपनी लड़ाई सिर्फ़ वेतन–भत्ते तक नहीं लड़नी है, बल्कि स्वास्थ्य–शिक्षा–आवास जैसे मुद्दे को भी अपनी लड़ाई में शामिल करना होगा।

चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर आओ! नये मज़दूर इंक़लाब की अलख जगाओ!!

दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार के विभिन्न इलाक़ों में चुनावी राजनीति का भण्डाफोड़ अभियान

दिल्ली के बादली क्षेत्र और पीरागढ़ी उद्योग नगर में चुनाव भण्डाफोड़ अभियान चलाते बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ता

मज़दूर बिगुल टीम

एक बार फिर चुनावी महानौटंकी का शोर मचा हुआ है। मतदान के "पवित्र अधिकार" का प्रयोग करने के वास्ते प्रेरित करने के लिए सरकारी तन्त्र से लेकर निजी कम्पनियों तक ने पूरी ताक़त झोंक दी है, पानी की तरह पैसे बहाये जा रहे हैं ताकि लोकतन्त्र के नाम पर 62 वर्ष से जारी स्वाँग से ऊबी हुई जनता को फिर से झूठी उम्मीद दिलायी जा सके। लेकिन हमारे पास चुनने के लिए आख़िर है क्या? झूठे आश्वासनों और गाली-गलौच की गन्दी धूल के नीचे असली मुद्दे दब चुके हैं। 16वीं लोकसभा का चुनाव देश का अब तक सबसे महँगा और ख़र्चीला चुनाव (लगभग 30000 करोड़ रुपये) होने जा रहा है, जिसमें एक बड़ा हिस्सा काले धन का लगा हुआ है। इस धमा-चौकड़ी के बीच बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, जागरूक नागरिक मंच, स्त्री मज़दूर संगठन और स्त्री मुक्ति लीग देश के कई राज्यों के विभिन्न शहरी और ग्रामीण इलाक़ों में चुनावी राजनीति का भण्डाफोड़ अभियान चलाकर लोगों को यह बता रहे हैं कि वर्तमान संसदीय ढाँचे के भीतर देश की समस्याओं का हल तलाशना एक मृगमरीचिका है। वैसे भी चुनाव कोई भी जीते, जनता हमेशा हारती ही है। मेहनतकशों की लूट बदस्तूर जारी रहेगी। इसलिए ऊपर से नीचे तक सड़ चुकी इस आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर बराबरी और न्याय पर टिका नया हिन्दुस्तान बनाने के लिए आम अवाम को संगठित करके एक नया क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करना ही एकमात्र रास्ता है।

यह अभियान राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के पीरागढ़ी, नांगलोई, मंगोलपुरी, वज़ीरपुर, करावलनगर, मुस्तफ़ाबाद, रोहिणी, बादली, नरेला, बवाना, शाहाबाद डेयरी, गुड़गाँव, नोएडा, गाज़ियाबाद; उत्तर प्रदेश के लखनऊ, गोरखपुर, इलाहाबाद, जौनपुर, बनारस; पंजाब के चण्डीगढ़, लुधियाना, संगरूर, गोविन्दगढ़, हरियाणा के जीन्द, कैथल, नरवाना; बिहार के पटना, आरा आदि क्षेत्रों में तथा मुम्बई में चलाया जा रहा है, जोकि मई के दूसरे सप्ताह तक जारी रहेगा। अलग-अलग स्थानों पर गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति, मुम्बई विश्वविद्यालय में युनिवर्सिटी कम्युनिटी फ़ॉर डेमोक्रेसी एंड इक्वैलिटी जैसे अन्य जनसंगठनों ने भी इसमें भागीदारी की है।

अभियान के दौरान कार्यकर्ताओं की टोलियाँ पिछले 62 वर्ष से जारी चुनावी तमाशे का पर्दाफ़ाश करते हुए बड़े पैमाने पर बाँटे जा रहे विभिन्न पर्चों, नुक्कड़ सभाओं, कार्टूनों और पोस्टरों की प्रदर्शनियों तथा नुक्कड़ नाटकों के ज़रिये लोगों को बता रही हैं कि दुनिया के सबसे अधिक कुपोषितों, अशिक्षितों व बेरोज़गारों वाले हमारे देश में कुपोषण, बेरोज़गारी, महँगाई, मज़दूरों का भयंकर शोषण या भुखमरी कोई मुद्दा ही नहीं है! आज विश्व पूँजीवादी व्यवस्था गहराते आर्थिक संकट तले कराह रही है। ऐसे में किसी पार्टी के पास जनता को लुभाने के लिए कोई ठोस मुद्दा नहीं है। सब जानते हैं कि सत्ता में आने के बाद उन्हें जनता को बुरी तरह निचोड़कर अपने देशी-विदेशी पूँजीपति आकाओं के संकट को हल करने में अपनी सेवा देनी है। सभी पार्टियों में अपने आपको पूँजीपतियों का सबसे वफ़ादार सेवक साबित करने की होड़ मची हुई है।

दिल्ली, गुड़गाँव, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद तथा लुधियाना में फ़ैक्टरी गेटों, औद्योगिक क्षेत्रों के चौराहों तथा मज़दूर बस्तियों में विशेष सघन अभियान चलाया गया। प्रचार टोलियों ने मज़दूरों से कहा कि अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया है कि संसद एक सुअरबाड़ा है और सरकार पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी है – चाहे इस पार्टी की हो या उस पार्टी की। देश का पूँजीवादी जनतन्त्र आज पतन के उस मुक़ाम पर पहुँच चुका है, जहाँ अब इस व्यवस्था के दायरे में छोटे-मोटे सुधारों के लिए भी आम जनता के सामने कोई विकल्प नहीं है। जनता को सिर्फ़ यह चुनना है कि लुटेरों का कौन-सा गिरोह अगले पाँच वर्ष तक उन पर सवारी गाँठेगा! विभिन्न चुनावी पार्टियों के बीच इस बात के लिए चुनावी जंग का फ़ैसला होना है कि कुर्सी पर बैठकर कौन देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा करेगा; कौन मेहनतकश अवाम को लूटने के लिए तरह-तरह के क़ानून बनायेगा; कौन मेहनतकश की आवाज़ कुचलने के लिए दमन का पाटा चलायेगा।

दस साल से सत्ता पर काबिज़ कांग्रेस के 'भारत निर्माण' के नारे की हवा निकल चुकी है। नरेन्द्र मोदी को पूँजीपति वर्ग के सामने एक ऐसे नेता के तौर पर पेश किया जा रहा है जो डण्डे के ज़ोर पर जनता के हर विरोध को कुचलकर मेहनतकशों को निचोड़ने और संसाधनों को मनमाने ढंग से पूँजीपतियों के हवाले करने में कांग्रेस से भी दस क़दम आगे रहकर काम करेगा! यही हाल अन्य सभी चुनावबाज़ पार्टियों का है। चाहे उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी हो, बिहार में नीतीश कुमार की जद(यू) हो, हरियाणा में इनेलो व हरियाणा जनहित कांग्रेस हों या महाराष्ट्र में शिवसेना व मनसे हों – सभी जनता की मेहनत को लूटकर टाटा-बिड़ला-अम्बानी आदि की तिजोरियाँ भरने के लिए बेचैन हैं। उदारीकरण-निजीकरण की विनाशकारी नीतियों पर सबकी आम सहमति है। 'आप' जैसी पार्टियों की भी कलई खुल चुकी है। पूँजीपतियों की दोनों बड़ी संस्थाओं – फ़िक्की और सी.आई.आई. में जाकर इनके नेताओं ने साफ़ कर दिया है कि वे खुलेआम नवउदारवादी नीतियों के समर्थक हैं, यानी वही नीतियाँ जो पिछले 23 वर्ष से देश के ग़रीबों पर कहर बरपा कर रही हैं। वैसे तो दिल्ली में डेढ़ महीने की अपनी सरकार में ही इन्होंने अपना असली मज़दूर-विरोधी और अवसरवादी चेहरा दिखा दिया था।

विभिन्न स्थानों पर अभियान टोलियों ने लोगों के बीच साफ़ तौर पर इस बात को रखा कि इस चुनाव में आप किस पार्टी पर जाकर ठप्पा लगायें या न लगायें इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। 1952 से अब तक पूँजी की लूट के गन्दे, ख़ूनी खेल के आगे रंगीन रेशमी परदा खड़ा करके जनतन्त्र का जो नाटक खेला जा रहा है, वह भी अब बेहद गन्दा और अश्लील हो चुका है। अब सवाल इस नाटक के पूरे रंगमंच को ही उखाड़ फेंकने का है। इस देश के मेहनतकशों और नौजवानों के पास वह क्रान्तिकारी शक्ति है जो इस काम को अंजाम दे सकती है। बेशक यह राह कुछ लम्बी होगी, लेकिन पूँजीवादी नक़ली जनतन्त्र की जगह मेहनतकश जनता को अपना क्रान्तिकारी विकल्प पेश करना होगा। उन्हें पूँजीवादी जनतन्त्र का विकल्प खड़ा करने के एक लम्बे इंक़लाबी सफ़र पर चलना होगा। यह सफ़र लम्बा तो ज़रूर होगा लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि एक हज़ार मील लम्बे सफ़र की शुरुआत भी एक क़दम से ही तो होती है! और यह शुरुआत हमें आज ही कर देनी चाहिए।

(बायें) चण्डीगढ़ और (बीच में) वजीरपुर, दिल्ली में पूँजीवादी राजनीति का भण्डाफोड़ करते हुए नाटक पेश करती नौजवान भारत सभा की टोलियाँ। (बायें) पटना में भण्डाफोड़ अभियान की सभा

कम्बोडिया में मज़दूर संघर्षों का तेज़ होता सिलसिला

बिगुल संवाददाता

कम्बोडिया में पिछले वर्ष से मज़दूर आन्दोलन में एक नया उभार आया है। टूलडाउन, हड़तालों, प्रदर्शनों आदि में तेज़ी आयी है। दिसम्बर 2013 से आन्दोलन और भी तीखा हो गया है। 24 दिसम्बर 2013 को न्यूनतम वेतन दोगुना करने (80 डॉलर से 160 डॉलर करने) की माँग के तहत वस्त्र उद्योग के दसियों हज़ार मज़दूरों ने हड़ताल कर दी थी। इसके साथ ही, पिछले 28 सालों से प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर क़ाबिज़ हुन सेन के इस्तीफ़े की माँग भी की गयी। सरकार ने मज़दूर आन्दोलन को दमन के ज़रिये कुचलने की कोशिश की है। 2 और 3 जनवरी को सेना बुलाकर निहत्थे मज़दूरों पर ए.के. 47 जैसे हथियारों से गोलियाँ बरसायी गयीं। लाठीचार्ज किया गया। लोहे की छड़ों से पीटा गया। इस दमन में पाँच मज़दूरों के मारे जाने की पुष्टि हुई है। बड़ी संख्या में मज़दूर ज़ख़्मी हुए हैं। 23 लोगों को गिरफ़्तार किया गया। दो लोगों को बाद में जमानत पर छोड़ दिया गया, लेकिन 21 अभी जेल में हैं। इन पर मज़दूरों को भड़काने, हिंसा फैलाने, सरकारी-ग़ैरसरकारी सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचाने जैसे बेबुनियाद दोष लगाये गये हैं। सरकार ने किसी भी तरह के प्रदर्शन पर रोक लगा दी है।

सरकार ने न्यूनतम वेतन में बीस डॉलर की वृद्धि करने की बात कही है। लेकिन मज़दूरों को यह वृद्धि स्वीकार नहीं है। जेल से 21 मज़दूरों को रिहा करने, 23 मज़दूरों पर चलाये जा रहे मुक़द्दमे रद्द करने और न्यूनतम मज़दूरी 160 डॉलर करने की माँगों पर फ़रवरी में कई दिनों तक चले टूलडाउन में तीन लाख मज़दूरों ने हिस्सा लिया। इस टूलडाउन के अन्तर्गत मज़दूरों ने ओवरटाइम लगाने से मना कर दिया। 12 मार्च को चार

दिनों की हड़ताल की जानी थी, जोकि बाद में 17-24 अप्रैल को करने का फ़ैसला किया गया। लेकिन मार्च में भी मज़दूरों के एक हिस्से ने हड़तालों में हिस्सा लिया। 17 अप्रैल से 24 अप्रैल तक होने वाली हड़ताल में 18 यूनियनें हिस्सा ले रही हैं।

दक्षिण एशिया में स्थित, वियतनाम और थाईलैण्ड के पड़ोसी कम्बोडिया देश की कुल आबादी लगभग 1 करोड़ 52 लाख है। कम्बोडिया का सकल घरेलू उत्पादन 14 बिलियन डॉलर है, जिसमें अकेले वस्त्र उद्योग का हिस्सा 5 बिलियन डॉलर है। वस्त्र उद्योग से ही कम्बोडिया का अधिकतर निर्यात होता है। इस उद्योग में लगभग 7 लाख मज़दूर काम करते हैं, जिसमें 90 प्रतिशत स्त्रियाँ हैं। ये मज़दूर नाईक, गैप, एडीडास, पूमा, एच एण्ड एम, मार्क्स एण्ड स्पेंसर जैसे ब्राण्डों के लिए माल तैयार करते हैं। चीन में न्यूनतम वेतन में वृद्धि होने के चलते ये कम्पनियाँ कम्बोडिया में अधिक ऑर्डर दे रही हैं। जहाँ कारख़ानों के मालिक, ठेकेदार और ब्राण्डेड कम्पनियाँ मालामाल हो रहे हैं, वहीं मज़दूरों की हालत बेहद बदतर है।

80-100 डॉलर महीना कमाने वाले इन मज़दूरों को भारत के मज़दूरों की तरह ही गन्दगी भरी परिस्थितियों में छोटे-छोटे कमरों में रहना पड़ रहा है और पर्याप्त व पौष्टिक भोजन की कमी से जूझना पड़ रहा है। वे दवा-इलाज की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाते। कमरों के किराये, भोजन, पानी, बिजली, दवा-इलाज की बढ़ती क़ीमतें गुज़ारा और भी मुश्किल बनाती जा रही हैं। 12-14 घण्ट का काम का बाझ, पर्याप्त और पौष्टिक भोजन, दवा-इलाज की कमी, कार्यस्थल पर अस्वास्थ्यकारी परिस्थितियाँ आदि के कारण मज़दूरों का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। 2 अप्रैल की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ एक दिन में ही तीन कारख़ानों में दो सौ मज़दूरों के बेहोश हो जाने के चलते उन्हें अस्पताल में दाख़िल करवाना पड़ा था। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ सन् 2011 में एक हज़ार मज़दूर कारख़ानों में काम के दौरान बेहोश हुए। शासन-प्रशासन देशी-विदेशी पूँजीपतियों के इशारों पर नाचता है। भ्रष्टाचार सारे रिकॉर्ड तोड़ रहा है। ऐसे हालात में मज़दूरों में आक्रोश होना स्वाभाविक है। कम्बोडिया के मज़दूरों का मौजूदा एकजुट उभार व्यापक रूप में फैले आक्रोश का ही नतीजा है।

विभिन्न पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ और यूनियनें मज़दूरों के इस आन्दोलन को समर्थन दे रही हैं। इसका मतलब यह हर्गिज़ नहीं है कि ये पूँजीवादी संगठन मज़दूरों का भला चाहते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि ये पूँजीवादी पार्टियाँ और यूनियनें मज़दूरों के आन्दोलन को अधिक से अधिक सीमित कर देना चाहते हैं, ताकि देसी-विदेशी पूँजीपतियों के हितों को कम से कम नुक़सान पहुँचे। दूसरा अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने के मकसद से मज़दूरों का समर्थन हासिल करने के लिए उन्हें मज़दूरों की माँगों के समर्थन का दिखावा भी करना पड़ रहा है।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद क्रान्तिकारी तत्व इस आन्दोलन को किस कदर सही दिशा में आगे बढ़ा पायेंगे, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। कम्बोडिया का यह मज़दूर उभार उस समय आया है जब विश्व पूँजीवाद भीषण आर्थिक मन्दी का शिकार है। मज़दूरों-मेहनतकशों के श्रम को किसी न किसी तरीक़े से अधिक से अधिक निचोड़कर मन्दी से छुटकारा हासिल करने की कोशिशें हो रही हैं। तेज़ी से बढ़ती महँगाई, महँगाई के मुकाबले मज़दूरी का बहुत कम बढ़ना, यहाँ तक कि वेतनों-भत्तों में कटौती होना, सरकार की तरफ़ से मिलने वाली सहूलियतों पर कटौती आदि विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में छाई मन्दी का ही नतीजा हैं। लेकिन जैसे-जैसे मज़दूरों-मेहनतकशों पर मन्दी का बोझ बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे जनाक्रोश भी बढ़ता जा रहा है। दुनिया के हर हिस्से में मज़दूरों-मेहनतकशों के आन्दोलन बढ़ते जा रहे हैं। कम्बोडिया के मज़दूर आन्दोलन का उभार विश्व मज़दूर आन्दोलन की एक नयी प्राप्ति है। यह साफ़ है कि नारकीय जीवन जैसे हालात में धकेल देने वाले पूँजीपति हुक़मरानों को मज़दूर वर्ग चैन की नींद नहीं लेने देगा।

ओरियण्ट क्राफ़्ट में फिर मज़दूर की मौत और पुलिस दमन
गारमेण्ट उद्योग के मज़दूरों के बर्बर शोषण की तस्वीर

(पेज 3 से आगे)

29,300 मज़दूर काम करते हैं। कम्पनी की गुड़गाँव सेक्टर 18 स्थित इस यूनिट में भी करीब 5000-7000 मज़दूर काम करते हैं, जिनमें से 3000 मज़दूर कम्पनी के कर्मचारी हैं, जबकि बाक़ी मज़दूरों को अलग-अलग ठेका कम्पनियों द्वारा काम पर रखा गया है। कम्पनी के मज़दूरों का मासिक वेतन 5900 रुपये (800 रुपये पी.एफ़. काटने के बाद 5100) है जबकि ठेका मज़दूर को लगभग 5700 रुपये मिलते हैं। ज़ाहिर है कि इतने कम वेतन पर गुड़गाँव जैसे महँगे इलाक़े में गुज़र कर पाना मुश्किल है, इसलिए अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए लगभग सभी मज़दूर सिंगल रेट पर ओवरटाइम करते हैं। 12-14 घण्टे हर रोज़ काम करने के बावजूद मज़दूर ज़्यादा से ज़्यादा 8,000 से 9,000 रुपये तक कमा पाते हैं। कम्पनी में हर समय मज़दूरों पर ज़्यादा से ज़्यादा टारगेट पूरा करने का दबाव रहता है। ज़्यादा से ज़्यादा काम कराने और निगरानी रखने के लिए मैनेजमेण्ट नये-नये तरीक़े अपनाता रहता है। 3-4 साल पहले सुपरवाइज़र ख़ुद स्टॉप घड़ियों के साथ मज़दूरों पर निगरानी रखते थे, आज स्टॉप घड़ियों के स्थान पर मैग्नेटिक कार्ड रीडर के माध्यम से समय की निगरानी रखी जाती है। हरेक सिलाई मशीन पर कार्ड रीडर लगा हुआ है, और कपड़े के हर बण्डल के साथ एक मैग्नेटिक कार्ड भी आता है, हर सिलाई मज़दूर को काम शुरू करने से पहले और ख़त्म करने के बाद इस कार्ड को पंच करना होता है, जिससे पता चल जाता है कि एक मज़दूर ने एक शर्ट बनाने में कितने सेकेण्ड लगाये। कम्पनी मज़दूरों को लूटने के कई और तरीक़े भी अपनाती है। जैसेकि इस घटना से कुछ ही समय पहले मैनेजमेण्ट ने मज़दूरों से कहा था कि यदि वह अपनी कैजुअल छुट्टी न लेकर पूरा महीना काम करें तो उन्हें 1000 से 1500 के बीच अतिरिक्त भुगतान किया जायेगा। लेकिन इस घटना के बाद फ़ैक्टरी दो दिन के लिए बन्द रही, जिसके चलते मज़दूरों को अब अलग से कोई पैसा नहीं दिया जायेगा। हर समय टारगेट पूरा करने का दबाव और अत्यन्त तनाव भरे माहौल में काम करने के कारण मज़दूर बीमार, चिड़चिड़े और अवसादग्रस्त रहते हैं।

इससे पहले 19 मार्च 2012 को भी ओरियण्ट क्राफ़्ट कम्पनी के सेक्टर 37 स्थित कारख़ाने में सुपरवाइज़र द्वारा एक मज़दूर को कैंची मारकर घायल करने के विरोध में मज़दूरों का गुस्सा ठीक इसी तरह फूट पड़ा था। गुड़गाँव में पिछले कुछ सालों के दौरान मज़दूरों के गुस्से के ऐसे अनगिनत छोटे-बड़े विस्फोट होते रहे हैं, पर किसी क्रान्तिकारी मज़दूर यूनियन के अभाव में ये बहुत जल्दी शान्त होकर बिखर जाते हैं और शोषण तथा दमन का सिलसिला पहले की तरह चलता रहता है।

कोई संगठित मज़दूर आन्दोलन न बन पाने और मज़दूरों की कोई माँग उठा पाने में असफल रहने के कारण आख़िरकार इससे मज़दूरों में निराशा और पस्ती और बढ़ जाती है। वे सोचने लगते हैं कि विरोध करने से कोई फ़ायदा नहीं। अगर इस कम्पनी में मज़दूरों की कोई जुझारू यूनियन होती तो मज़दूर मैनेजमेण्ट पर अपनी जायज़ माँगों के लिए दबाव बना सकते थे और कम्पनी की सारी इकाइयों को ठप्प करके प्रशासन को कम्पनी के ख़िलाफ़ कार्रवाई के लिए मजबूर कर सकते थे। क्रान्तिकारी यूनियन की मौजूदगी में मालिक, पुलिस और प्रशासन चाहकर भी मज़दूरों का दमन नहीं कर सकते थे।।

लोकसभा चुनाव नज़दीक आता देख तमाम धन्धेबाज़ चुनावी पार्टियों के नेता जनता का वोट हासिल करने की कोशिश में लगे हैं। परन्तु इन तमाम चुनावी मदारियों को मज़दूरों की कितनी परवाह है, इसका पता इसी बात से चल जाता है कि इतनी बड़ी घटना हो जाने के बावजूद अब तक किसी भी चुनावी पार्टी के नेता ने मज़दूरों से मिलकर सच्चाई जानने की कोशिश नहीं की। यहाँ तक कि ख़ुद को मज़दूरों का प्रतिनिधि बताने वाली सी.पी.आई, सी.पी.आई (एम), और सी.पी.आई (माले) जैसी चुनावी वामपन्थी पार्टी के नेताओं ने भी इस मुद्दे पर चुप्पी साध रखी है, जबकि यह घटना किसी दूर-दराज के इलाक़े में न होकर गुड़गाँव शहर के बीचों-बीच औद्योगिक क्षेत्र में घटी है।

आज मज़दूरों के दिलों में अपने खुले शोषण के प्रति मैनेजमेण्ट, पुलिस-प्रशासन और सरकार के तानाशाहीपूर्ण रवैये के ख़िलाफ़ भयंकर रोष है। परन्तु जब तक मज़दूर अलग-अलग अपनी लड़ाई लड़ते रहेंगे, तब तक जीत पाना नामुमकिन है। देश के ठेका मज़दूरों की काम की परिस्थितियाँ और माँगें एक समान हैं, इसलिए व्यापक मज़दूर आबादी को अपने अधिकारों की लड़ाई को कारख़ानों की सीमाओं से बाहर लाना होगा और इलाक़ाई क्रान्तिकारी यूनियनें बनानी होंगी।

भारत के मज़दूर वर्ग के सामने क्या विकल्प है?

(पेज 1 से आगे)

फ़ीसदी हो गयी और 2009-10 में यह बढ़कर 73 प्रतिशत हो गयी। यानी कि शहरों में आज ग़रीबी रेखा के नीचे बसर करने वालों का हिस्सा कुल शहरी आबादी में 73 फ़ीसदी है। गाँवों में हालात और भी बदतर थे। गाँवों में 2200 कैलोरी से कम का पोषण पाने वाले लोगों का हिस्सा 1993-94 में 58.5 फ़ीसदी था; 2004-05 में यह बढ़कर 69.5 प्रतिशत हो गया और 2009-10 में यह बढ़कर 76 प्रतिशत हो गया। आज सरकारी आँकड़ों के हिसाब से ही चलें तो भारत में बच्चों की कुल आबादी का करीब 40 प्रतिशत कुपोषित है। लेकिन सच्चाई यह है कि वास्तविक आँकड़ा 56 प्रतिशत के ऊपर बैठता है। सरकार हर वर्ष कुपोषण और भुखमरी को कम करने की बजाय, कुपोषण और भुखमरी के पैमाने को ही नीचे ले आती है, ताकि कुपोषण के आँकड़ों को कम करके दिखाया जा सके।

कांग्रेस-नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार के एक दशक की नवउदारवाद और निजीकरण की नीतियों का यह परिणाम मेहनतकश और मज़दूर जनता को भुगतना पड़ा है। ऐसे में, मोदी को भाजपा देश की आम जनता के सामने, मध्यवर्गीय जनता के सामने एक विकल्प के रूप में पेश कर रही है! यह बताया जा रहा है कि मोदी के नेतृत्व में देश विश्व की 'महाशक्ति' बन जायेगा, भ्रष्टाचार ख़त्म हो जायेगा, 'विकास' होगा, पूरे देश में बुलेट ट्रेनों का नेटवर्क बिछा दिया जायेगा, वग़ैरह। लेकिन वास्तव में मोदी की नीतियाँ क्या हैं? मोदी ने पिछले 15 वर्षों में गुजरात में मेहनतकश जनता के साथ क्या बर्ताव किया है?

पूँजी की नग्न तानाशाही को लागू करने वाला बेशर्म मोहरा : नरेन्द्र मोदी

नरेन्द्र मोदी ने पिछले 13 वर्षों में गुजरात में जो नीतियाँ लागू की हैं, वे वास्तव में फासीवादी नीतियों को लागू करने का एक मॉडल हैं। याद रहे कि इसी नरेन्द्र मोदी ने एक बार कहा था कि वह पूरे गुजरात को पूँजीपतियों के लिए एक विशेष आर्थिक क्षेत्र बना देगा; साथ ही कुछ ही वर्ष पहले इसी मोदी ने कहा था कि गुजरात में श्रम विभाग की कोई आवश्यकता नहीं है। ये दो कथन मज़दूर वर्ग के प्रति मोदी के नज़रिये को दिखलाते हैं। मोदी ने पिछले 13 वर्षों में गुजरात में नंगे तौर पर पूँजी की तानाशाही को लागू किया है। निश्चित तौर पर, गुजरात की प्रति व्यक्ति आय देश की प्रति व्यक्ति आय से 20 प्रतिशत ज़्यादा है। लेकिन साथ ही यह भी एक तथ्य है कि गुजरात में गाँवों और शहरों में मज़दूरी देश की औसत ग्रामीण और शहरी मज़दूरी से कहीं कम है। वास्तव में, गुजरात की औसत मज़दूरी बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे ग़रीब राज्यों से भी कम है। केवल एक राज्य है जो मज़दूरी के मामले में गुजरात से पीछे है और वह है छत्तीसगढ़, जहाँ पर मोदी जैसा ही भाजपा का एक अन्य फासिस्ट रमन सिंह सत्ता में बैठा है! इस आँकड़े का अर्थ क्या है? प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय से ज़्यादा और मज़दूरी सबसे कम? इसका अर्थ यह है कि गुजरात में जो विकास हो रहा है, जो उत्पादन हो रहा है, उसका बेहद छोटा हिस्सा ग़रीब मेहनतकश जनता के पास पहुँचता है। इतना कम कि दो वक़्त का खाना भी मुश्किल से जुगाड़ हो पाता है। वहीं पूँजीपतियों का मुनाफ़ा गुजरात में देश के औसत से कहीं ज़्यादा है। यह बेवजह नहीं है कि हर पूँजीपति आज गुजरात में कारख़ाना लगाना चाहता है! इसका सीधा कारण यह है कि उसे गुजरात में लगभग मुफ़्त ज़मीन, लगभग मुफ़्त पानी (वह भी बड़े बाँधों को बनाकर और लाखों परिवारों को उजाड़कर!), कई वर्षों तक कर से छूट, श्रम क़ानूनों को लागू करने की मजबूरी से पूरी तरह छूट, और मज़दूरों के आवाज़ उठाने पर उन्हें कुचलने के लिए तैयार बैठी सरकार मिलती है! यही कारण है कि गुजरात में होने वाले मज़दूर उभारों की ख़बर तक गुजरात के बाहर नहीं जाने दी जाती। पाशविक स्थितियों में मज़दूरों से काम करवाया जाता है; उन्हें न्यूनतम मज़दूरी से भी बेहद कम मज़दूरी दी जाती है; और ज़रा भी चूँ-चपड़ करने पर डण्डे और गोलियाँ बरसाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती! मोदी के विकास का यही अर्थ है : पूँजीपतियों को बेरोक-टोक ज़बरदस्त मुनाफ़ा, खाते-पीते मध्यवर्ग को चमचमाते शॉपिंग मॉल, 8-लेन एक्सप्रेस हाईवे, मल्टीप्लेक्स हॉल, आदि और मज़दूरों के लिए? मज़दूरों के लिए "देश और राष्ट्र के विकास" के लिए 15-15 घण्टे कारख़ानों और वर्कशापों में हाड़ गलाना और चुपचाप हाड़ गलाना! जो आवाज़ उठायेगा, वह देश का दुश्मन और शत्रु कहलायेगा! मोदी के "राष्ट्र" में मज़दूरों की जगह वही है जो कि प्राचीन रोम और यूनान के गणराज्यों में गुलामों की थी! "राष्ट्र" के "विकास" का मोदी के लिए क्या अर्थ है? यह है पूँजीपतियों का अकूत मुनाफ़ा, खाते-पीते मध्यवर्ग को ढेर सारी सहूलियतें और आम ग़रीब मेहनतकश आबादी के लिए नारकीय और पाशविक जीवन! यही कारण है कि आज पूरा मीडिया मोदी के पक्ष में लहर बनाने में लगा हुआ है। मोदी ने अपने प्रचार के लिए वर्ल्डवाइड, सोहा इण्टरनेशनल व एपको जैसी कम्पनियों को करोड़ों-करोड़ के ठेके दिये हैं। इसके लिए जो अरबों डॉलर ख़र्च किये जा रहे हैं, वे कहाँ से आ रहे हैं? वे इसी देश के कारपोरेट घरानों, पूँजीपतियों और धनपशुओं की जेब से आ रहे हैं! वैश्विक मन्दी की मार भारत के पूँजीपतियों पर पड़ी है; ऐसे में, अपने मुनाफ़े की दर को बनाये रखने के लिए पूँजीपति इस मन्दी का पूरा बोझ मज़दूर वर्ग पर डालना चाहते हैं, उनका शोषण बढ़ाना चाहते हैं, उनकी लूट को और सघन बनाना चाहते हैं; लेकिन देश का मज़दूर वर्ग पहले ही असहनीय दमन और शोषण से सुलग रहा है! ऐसे में, देश के अम्बानी-टाटा-बिड़ला सरीखे पूँजीपतियों को कोई तानाशाह चाहिए जो कि "निर्णायकता" से मज़दूर असन्तोष, जन असन्तोष से निपट सके! जब प्रचार में आपसे कहा जाता है कि मोदी जैसे "निर्णायक नेता" की देश को ज़रूरत है, तो हम मज़दूरों को समझ जाना चाहिए कि किसके लिए, किसके ख़िलाफ़ और किसके द्वारा "निर्णायकता" की बात की जा रही है। आज भारत के पूँजीपति वर्ग को नरेन्द्र मोदी जैसे तानाशाह की ज़रूरत है जो पूँजी के पक्ष में तानाशाही क़ायम करने के लिए पूर्ण निर्णायकता दिखला सके। यही कारण है कि जबसे चुनावों की घोषणा हुई है, तबसे भारत का शेयर बाज़ार उछला जा रहा है! वह इस बात की सम्भावना से गदगद है कि मोदी सत्ता में आ सकता है और इसके लिए उसने मोदी पर अरबों-खरबों का दाँव भी लगा दिया है! 2014 में बेहद ख़राब हालत में खुला सेंसेक्स चुनाव की घोषणा होते ही 22,000 के ऊपर जा पहुँचा तो वहीं निफ़्टी 6500 के ऊपर उछल गया। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि "मोदी आ रहे हैं और पूँजीपतियों की नंगी तानाशाही ला रहे हैं!" हम मज़दूर अगर इस बात को नहीं समझते तो आने वाला समय हमारे लिए बेहद कठिन होगा! यह एक नंगा मज़दूर-विरोधी तानाशाह है, जिसे आज देश की सभी समस्याओं के समाधान के रूप में पेश किया जा रहा है! हम अपनी अधूरी राजनीतिक चेतना और ज़िन्दगी के नारकीय हालात से मुक्ति की चाहत में इस बात पर ध्यान नहीं देते कि आख़िर मोदी कौन-सी नीतियों की बात कर रहा है। लेकिन मज़दूर वर्ग के हरेक व्यक्ति को आज इस बात पर ग़ौर करना चाहिए कि मोदी की नीतियाँ क्या हैं।

गुजरात में पिछले 13 वर्षों से मोदी की अगुवाई में संघ गिरोह अपना फासीवादी प्रयोग कर रहा है। इस प्रयोग ने गुजरात की जनता को क्या दिया है? आइये देखते हैं। 2002 में मुसलमानों के विरुद्ध जो नरसंहार मोदी की सरकार के संरक्षण में हुआ, उसमें मरने वाले अधिकांश मुसलमान कौन थे? उसमें जलाये और काटे जाने वाले बेगुनाह कौन थे? मुख्यत: और मूलत: वे बेगुनाह गुजरात के ग़रीब मुसलमान थे। एक एहसान ज़ाफ़री की दर्दनाक हत्या आज तक सुर्ख़ियों में है, लेकिन गुजरात में मारे गये अनगिन बेगुनाह ग़रीब मुसलमान गुमनाम हो चुके हैं। मज़दूरों पर पूँजी की फासीवादी तानाशाही को स्थापित करने का काम हमेशा ही किसी न किसी क़िस्म के कट्टरवाद को बढ़ावा देकर किया जाता है। हिटलर ने यह काम यहूदियों को निशाना बनाकर किया था, तो मोदी और संघ गिरोह यह काम भारत में मुसलमानों को निशाना बनाकर करता है। फासीवाद को मज़दूरों और आम मध्यवर्गीय जनता के सामने कोई नक़ली शत्रु पेश करना होता है, ताकि असली शत्रु पर ध्यान न जाये। इसलिए पूँजीपति वर्ग की सेवा करते हुए मोदी जैसे फासीवादी भारत में मुसलमानों को शत्रु के रूप में पेश करते हैं और हिन्दू मज़दूरों से कहते हैं कि 14 करोड़ मुसलमान यानी 14 करोड़ बेरोज़गार हिन्दू! लेकिन सच्चाई क्या है? 14 करोड़ मुसलमानों में बेरोज़गारी की दर हिन्दुओं के बीच बेरोज़गारी की दर से कहीं ज़्यादा है! जो मुसलमान रोज़गारशुदा नागरिकों के तौर पर सरकारी आँकड़ों में दर्ज हैं, उनमें से अधिकांश स्वरोज़गार-प्राप्त मज़दूर हैं! वास्तव में, जब पूँजीवादी व्यवस्था जनता के व्यापक हिस्सों को रोज़गार नहीं दे पाती, तभी वह इस प्रकार के विभाजन को अंजाम देती है। और यह काम सबसे कारगर तरीक़े से फासीवादी ताक़तें अंजाम देती हैं और एक अन्धी कट्टरता को भड़काकर मज़दूरों के बीच बँटवारा करती हैं। हमें इसकी असलियत को समझना चाहिए! अगर मोदी सरकार हिन्दुओं की इतनी ही बात करती है, तो ज़रा देखिये कि गुजरात में समूची जनता के जीवन के हालात क्या हैं? इसी से पता चल जायेगा कि मोदी जैसी फासीवादी साम्प्रदायिकता का केवल इस्तेमाल करते हैं और उनका असली मक़सद होता है मज़दूर वर्ग की एकजुटता को धार्मिक आधार पर तोड़ना और उसके बाद उन पर पूँजी के चाबुक बरसाना।

गुजरात में 51.9 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। मनरेगा के तहत इस योजना के अधिकारी सभी ग्रामीण मज़दूरों में से मात्र 19 प्रतिशत को रोज़गार मिलता है और वह भी मात्र 60 दिनों के लिए। गुजरात में मज़दूरों के बीच बेरोज़गारी की दर देश के सभी राज्यों से ज़्यादा है और जिन्हें रोज़गार मिलता भी है, उनमें ठेका मज़दूरों का प्रतिशत सबसे ज़्यादा है। गुजरात पर विदेशी क़र्ज़ 1 लाख 38 हज़ार करोड़ डॉलर का है जिसका सूद चुकाने के लिए गुजरात की आम मेहनतकश जनता पर करों का भयंकर बोझ है। गुजरात में विकास का अर्थ पूँजीपतियों के लिए अबाधित मुनाफ़ा है। कारपोरेट कम्पनियों को निवेश के लिए सबसे अनुकूल अवसर मुहैया कराये जाते हैं, जिनकी हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। ऐसे में, अगर हम कांग्रेस और भाजपा की आर्थिक नीतियों की बात करें तो उनमें कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। भाजपा ज़्यादा तानाशाह और दमनकारी तरीक़े से पूँजी के शासन को लागू करती है, जबकि कांग्रेस थोड़े "कल्याणवाद" की चाशनी में भिगोकर उन्हीं नीतियों को लागू करती है। फ़िलहाल, मन्दी की मार खाये पूँजीपति वर्ग को मोदी के रूप में ज़्यादा तानाशाह क़िस्म के शासन की ज़रूरत है और यही कारण है कि पूरा कारपोरेट मीडिया और पूँजीपति वर्ग इस समय नरेन्द्र मोदी के कसीदे पढ़ रहा है। लेकिन सच्चाई यह है कि कांग्रेस की सरकार बने या फिर भाजपा की, मेहनतकश वर्ग को भूख, कुपोषण, बेरोज़गारी और महँगाई के अलावा और कुछ नहीं मिलने वाला है। याद रहे कि जब अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन की सरकार बनी थी, उस समय देश के इतिहास में पहली बार निजीकरण की गति को बढ़ाने के लिए एक विनिवेश मन्त्रालय बना था, जिसका ज़्यादा सही नाम 'निजीकरण मन्त्रालय' होना चाहिए। इस दौर में ठेकाकरण और निजीकरण की रफ़्तार अभूतपूर्व रूप से बढ़ी थी। इसी समय प्याज़ और नमक की क़ीमतों ने सारे रिकॉर्ड तोड़े थे, जिसके कारण राजग की सरकार 2004 में गिर गयी थी। इसलिए भाजपा की आर्थिक नीतियाँ वही हैं, जो कि कांग्रेस की आर्थिक नीतियाँ हैं; शराब वही है, बस बोतल अलग है।

तथाकथित "तीसरे मोर्चे" की सच्चाई : मौक़ापरस्त, सत्तालोलुप भ्रष्टाचारियों और पूँजी के चाकरों का मजमा

तीसरे मोर्चे का शासन भी भारत की मेहनतकश जनता 1996 से 1997 तक देख चुकी है। इस दौर में भी निजीकरण और उदारीकरण की रफ़्तार में कोई कमी नहीं आयी थी। संयुक्त मोर्चे की सरकार के दौरान संसदीय वामपन्थी भी सरकार में शामिल थे और कृषि मन्त्रालय संसदीय वामपन्थी नेता चतुरानन मिश्र के हाथों में था। और इसी दौर में इस संशोधनवादी नेता ने कृषि के क्षेत्र में विदेशी निवेश और साथ ही साम्राज्यवादी हस्तक्षेप को आज्ञा देने की नीतियाँ लागू करते हुए 'टर्मिनेटर बीजों' को इजाज़त दी थी। यह भूलना नहीं चाहिए कि यह कृषि के क्षेत्र में पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने वाली एक अहम नीति थी, जिसकी क़ीमत देश का ग़रीब किसान आज तक भुगत रहा है।

आज जो ताक़तें तीसरा मोर्चा बनाने में लगी हुई हैं, वे कौन हैं? बीजू जनता दल के नवीन पटनायक जिसने ओडिशा में पास्को जैसी कम्पनियों को प्राकृतिक संसाधनों को लूटने और जनजातीय और किसान आबादी को उजाड़ने की पूरी आज़ादी दी है; यही राज्य है जिसमें निजी कम्पनियों को खनिजों और धातुओं के उत्खनन के अरबों रुपयों के ठेके दिये गये हैं। तीसरे मोर्चे के एक अन्य घटक हैं मुलायम सिंह यादव, जिन्होंने उत्तर प्रदेश में अपने विभिन्न शासनकालों के दौरान भ्रष्टाचार और अपराध के सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये। हाल के मुज़फ़्फ़रनगर दंगों में समाजवादी पार्टी की मुसलमानों की हिमायत की असलियत भी खुलकर सामने आ गयी। बसपा की मायावती की कहानी भी कुछ अलग नहीं है, जिनका सपना पहले उत्तर प्रदेश की दलित महारानी बनने का था और अब प्रधानमन्त्री बनने का हो गया है। दलितों के हितों की बात करते हुए मायावती को एक समय में भाजपा जैसी सवर्णवादी पार्टी से गठजोड़ बनाने में कोई तक़लीफ़ नहीं पेश आयी थी! अपने शासन के दौरान उत्तर प्रदेश में कारपोरेट पूँजीपति वर्ग को ज़बरदस्त मुनाफ़े वाले निर्माण के

(पेज 8 पर जारी)

भारत के मज़दूर वर्ग के सामने क्या विकल्प है?

(पेज 7 से आगे)

ठेके देने में तो मायावती ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये थे; कईयों ने तो मायावती की सरकार को जेपी बिल्डर की सरकार क़रार दिया था। और इस पूरी प्रक्रिया में दलित साम्राज्ञी मायावती ने अपने लिये भी राजसी शानो-शौक़त के तमाम इन्तज़ाम कर लिये। जयललिता और करुणानिधि जैसे लोग पहले ही साबित कर चुके हैं कि अपने राजनीतिक हितों और सत्ता के लालच में वे कभी भी किसी की भी गोद में बैठने में कोई दिक़्क़त नहीं महसूस करते! ममता बनर्जी के बारे में जितना कम कहा जाये उतना अच्छा है! अभी हाल ही में पश्चिम बंगाल में मज़दूरों और निम्न मध्यवर्ग का पैसा लेकर भागने वाले सारदा चिटफ़ण्ड के मालिक से ममता बनर्जी के करीबी रिश्ते आज सभी के सामने हैं! क्या कोई भूल सकता है कि 1970 के दशक में पश्चिम बंगाल में क्रान्तिकारी नौजवानों और मज़दूरों का क़त्लेआम करवाने में ममता बनर्जी की क्या भूमिका थी? अभी इन तमाम व्याभिचारियों और भ्रष्टाचारियों की तीसरे मोर्चे में भागीदारी पक्की नहीं है और ये मौक़ापरस्त छोटी व क्षेत्रीय पूँजीवादी पार्टियाँ चुनाव के नतीजों का इन्तज़ार कर रही हैं और अपने सारे पत्ते खोले हुए हैं। नतीजों के बाद ये तय करेंगे कि किसे किसकी गोद में बैठना है!

जहाँ तक संसदीय वामपन्थियों का सवाल है, तो साम्प्रदायिक फासीवाद को रोकने के नाम पर वे भी हर प्रकार के सिद्धान्तहीन मोर्चे बनाने के लिए तैयार हैं। केरल और पश्चिम बंगाल में अपने शासनकालों में इन संसदीय वामपन्थियों ने टाटा-बिड़ला सरीखे बड़े पूँजीपतियों के समक्ष यह सिद्ध किया कि पूँजी के तलवे चाटने के मामले में उनकी जीभ कांग्रेस और भाजपा जैसी नंगी पूँजीवादी पार्टियों से छोटी नहीं है! नन्दीग्राम, सिंगूर और लालगढ़ में पूँजीपतियों के लिए ज़मीन और अन्य संसाधन जनता से छीनने के लिए अगर क़त्लेआम भी करना पड़ा तो इसमें माकपा और भाकपा जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियों ने कोई हिचक नहीं दिखलायी। इनका दोगलापन इसी बात से ज़ाहिर हो जाता है कि जिन मज़दूर-विरोधी नीतियों को ये अपने शासन में लागू करती रही थीं, राष्ट्रीय पैमाने पर मज़दूर वर्ग का वोट पाने के लिए ये उन्हीं नीतियों के नक़ली विरोध का नाटक करती हैं। इनकी सीटू, एटक आदि जैसी संशोधनवादी ग़द्दार ट्रेड यूनियनें हर वर्ष दो दिनों की आम हड़ताल का एक जलसा आयोजित करती हैं, जिसे कि सरकार ने भी बीमा, बैंक आदि में काम करने वाले खाते-पीते कर्मचारियों के लिए "राष्ट्रीय छुट्टी" मान लिया है! लेकिन इस देश के 93 प्रतिशत ठेका व दिहाड़ी मज़दूरों की माँगों पर ये ट्रेड यूनियनें या तो चुप हैं या फिर नक़ली विरोध की नौटंकी करती हैं। सही मायनों में ये संसदीय वामपन्थी देश के मज़दूरों के सबसे बड़े दुश्मन हैं और इनकी असलियत को समझना आज मज़दूर आन्दोलन के लिए एक बुनियादी पूर्वशर्त बन चुका है।

मज़दूर वर्ग और जनता को ठगने का नया औज़ार : आम आदमी पार्टी

पिछले वर्ष भारतीय पूँजीवादी राजनीति में आम आदमी पार्टी के रूप में एक नये सितारे का उदय हुआ। इस पार्टी ने आते ही "नयी आज़ादी", "स्वराज्य", "भ्रष्टाचार-मुक्त भारत" आदि जैसे गर्मागर्म नारे दिये। दिल्ली के विधानसभा चुनावों में 28 सीटें हासिल करके 'आप' ने कांग्रेस के बाहरी समर्थन से सरकार भी बनायी। और 49 दिनों बाद मज़दूर आन्दोलन के दबाव के कारण यह पार्टी सरकार छोड़कर भाग खड़ी हुई। उसे भागने के लिए एक बहाना चाहिए था, जो कि 'जनलोकपाल बिल' के रूप में उसे मिल गया! इस बिल के पहले इस पार्टी ने सभी अन्य निर्णयों को पास करवाने के लिए उपराज्यपाल के पास भेजा था। लेकिन जनलोकपाल बिल को उपराज्यपाल के पास अनुमोदन के लिए नहीं भेजने पर 'आप' के मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल अड़ गये! क्योंकि उन्हें भागने का कोई कारण चाहिए था! केजरीवाल क्यों भागना चाहता था? इसका कारण यह है कि अपने घोषणापत्र में 'आप' ने दिल्ली के मज़दूरों से वायदा किया था कि ठेका प्रथा को नियमित प्रकृति के कामों से ख़त्म किया जायेगा। सरकार बनते ही दिल्ली परिवहन निगम, होम गार्ड, दिल्ली मेट्रो रेल, ठेका शिक्षकों व असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले हज़ारों मज़दूरों ने केजरीवाल सरकार को घेरना शुरू किया। इन मज़दूरों की माँग थी कि ठेका प्रथा ख़त्म करने के वायदे को केजरीवाल सरकार पूरा करे। लेकिन केजरीवाल सरकार इन वायदों को कैसे पूरा कर सकती थी? उसने तो अपना श्रम मन्त्री ही एक ऐसे व्यक्ति गिरीश सोनी को बनाया था जोकि चमड़े के कारख़ाने का मालिक है! नतीजतन, 6 फ़रवरी को जब हज़ारों ठेका मज़दूरों ने दिल्ली सचिवालय का घेराव किया तो श्रम मन्त्री गिरीश सोनी ने ठेका-प्रथा ख़त्म करने के लिए विधेयक पास करवाने से साफ़ इंक़ार कर दिया और इस तरह मज़दूरों के साथ किये गये वायदे से 'आप' सरकार खुले तौर पर मुकर गयी। इसके पहले दिल्ली परिवहन निगम व अन्य कई ठेका कर्मचारी केजरीवाल को दौड़ा चुके थे। केजरीवाल को यह समझ आ गया था कि सरकार में बने रहने पर उसकी बहुत किरकिरी होगी, क्योंकि मज़दूर उसे जवाबदेही से भागने नहीं देंगे! नतीजतन, केजरीवाल सरकार छोड़कर ही भाग खड़ा हुआ।

इसके बाद उसने पूँजीपतियों की एक बैठक में आम आदमी पार्टी की आर्थिक नीति का खुलासा करते हुए कहा कि आम आदमी पार्टी उद्योग-धन्धों में सरकार के हस्तक्षेप को ख़त्म कर देगी! इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ है कि सभी प्रकार के श्रम क़ानूनों, कर अनिवार्यताओं से पूँजीपतियों को छूट! यही काम तो कांग्रेस और भाजपा पिछले कई दशकों से कर रही हैं! तो फिर मज़दूरों के लिए कांग्रेस, भाजपा और आम आदमी पार्टी में क्या फ़र्क़ रहा? कुछ भी नहीं! बस इतना फ़र्क़ है कि आम आदमी पार्टी भ्रष्टाचार-विरोध के नारे की आड़ में जनता को मूर्ख बना रही है। केजरीवाल का कहना है कि देश में सभी समस्याओं के मूल में भ्रष्टाचार है! यदि भ्रष्टाचार ख़त्म हो जाये तो साम्प्रदायिकता, शोषण आदि सबकुछ ख़त्म हो जायेगा! लेकिन अगर भ्रष्टाचार ख़त्म हो भी जाये (जोकि पूँजीवादी व्यवस्था में असम्भव है!) तो भी क़ानून-सम्मत लूट का क्या होगा? देश का संविधान और क़ानून निजी सम्पत्ति और मुनाफ़ा कमाने की इजाज़त देता है! देश का क़ानून जो ग़रीबी रेखा और न्यूनतम मज़दूरी तय करता है, यदि उस पर अमल हो भी जाये (जोकि असम्भव है!) तो क्या मज़दूरों को एक इज़्ज़त-आसूदगी भरी ज़िन्दगी मिल सकती है? नहीं! गुजरात में न्यूनतम मज़दूरी 5300 रुपये है। इसी से कुछ आगे या कुछ पीछे अधिकांश अन्य राज्यों की न्यूनतम मज़दूरी है! यह न्यूनतम मज़दूरी यदि लागू हो भी जाये तो क्या हम अपने बच्चों को एक बेहतर भविष्य दे सकते हैं? नहीं! और पूँजीपतियों को भ्रष्टाचार ख़त्म होने से कोई नुक़सान नहीं होगा! क्योंकि भ्रष्टाचार के ज़रिये बस कुल मुनाफ़े के बँटवारे में फ़र्क़ आयेगा! देश की नेताशाही और नौकरशाही ग़लत ठेके देने आदि में पूँजीपतियों से जो घूस लेती है, यदि वह घूस न ले तो वह पैसा देश के मज़दूर वर्ग के पास नहीं आयेगा, बल्कि टाटा-बिड़ला-अम्बानी की जेब में ही जायेगा! लूट के माल में बँटवारे को लेकर जो झगड़ा पूँजीपति मालिक वर्ग और पूँजीपति नौकरशाह और नेता वर्ग के बीच है, उससे हम मज़दूरों का क्या लेना-देना? अगर आम आदमी पार्टी घूसखोरी और भ्रष्टाचार को पूरी तरह ख़त्म भी कर दे (जो कि एक दिवास्वप्न है!) तो भी इससे लूट की हिस्सेदारी के अनुपात में फ़र्क़ आयेगा और मालिक वर्ग का हिस्सा बढ़ जायेगा! हम मज़दूरों को इससे कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए हमें एक भ्रष्टाचार-मुक्त सन्त पूँजीवाद नहीं चाहिए, बल्कि हमें पूँजीवाद का विकल्प चाहिए; और आम आदमी पार्टी के तमाम नेता कई बार पूँजीपतियों के सामने दाँत चियारकर बोल चुके हैं कि वे पूँजीवाद-विरोधी नहीं हैं, बल्कि भ्रष्टाचारी पूँजीवाद विरोधी हैं। लेकिन किसी और क़िस्म का पूँजीवाद हो ही नहीं सकता। जब आप मुनाफ़ाखोर व्यवस्था बनाते हैं, मुनाफ़े की अन्धी हवस और संस्कृति को पनपाते हैं, तो फिर मुनाफ़ाखोरी नियम-कायदे-क़ानून के दायरे में नहीं रहती! वह मुनाफ़ाखोरी घूसखोरी, भाई-भतीजावाद आदि को भी जन्म देती है। जो भी मज़दूर वर्ग को भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद का सपना दिखलाता है, वह मज़दूर वर्ग का ग़द्दार है, उसे धोखा दे रहा है। आम आदमी पार्टी आज यही काम कर रही है, ताकि पूँजीवादी व्यवस्था से उठते भरोसे को फिर से बिठाया जा सके और मज़दूर वर्ग में पूँजीवाद को लेकर विभ्रम पैदा किया जा सके। इसलिए आम आदमी पार्टी से मज़दूरों को ख़ास तौर पर सावधान रहना चाहिए, ये सबसे ख़तरनाक पूँजी के चाकरों में से एक हैं!

हमारे पास क्या विकल्प है?

उपरोक्त सभी पार्टियाँ जब-जब शासन में रही हैं तो इन्होंने उन्हीं आर्थिक नीतियों को अलग-अलग ज़ोर के साथ लागू किया है जिन नीतियों को कांग्रेस और भाजपा लागू करती रही हैं; जिन नीतियों के फलस्वरूप आज देश का मज़दूर वर्ग ग़रीबी और तंगहाली के दलदल में फँसा हुआ है। न तो वह दो वक़्त इज़्ज़त और सुकून की रोटी खा सकता है, न अपने बच्चों का इलाज करा सकता है, न उन्हें पढ़ा सकता है।

मज़दूरों और मेहनतकशों की यह हालत इसलिए नहीं हो रही है कि देश में खाने के लिए अनाज, इलाज के लिए दवा, रहने के लिए मकान और पहनने के लिए कपड़े की कमी है। इन सभी चीज़ों के उत्पादन में दुनिया में भारत अव्वल कतारों में है। लेकिन ये सारे संसाधन, धन-दौलत, ऐशो-आराम के साज़ो-सामान पैदा करने के बावजूद देश का मज़दूर और मेहनतकश भुखमरी और कुपोषण में जी रहा है। इसका कारण क्या है? इसका कारण मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था है जो श्रम की लूट पर टिकी हुई है। इस व्यवस्था की सेवा करने वाली राज्यसत्ता का ध्वंस किये बिना इस व्यवस्था का विकल्प नहीं खड़ा किया जा सकता है। चुनावों के रास्ते सरकार बना लेने से यह व्यवस्था नष्ट नहीं होने वाली है क्योंकि व्यवस्था का अर्थ केवल संसद, विधानसभा आदि नहीं होते। ये तो पूँजीवादी व्यवस्था के दिखाने के दाँत हैं। इस व्यवस्था के असली खाने के दाँत तो पुलिस, फ़ौज, सशस्त्र बल और नौकरशाही है, जो कि चुनाव के दायरे में नहीं आते। हर चार या पाँच वर्ष पर सरकारें बदल जाती हैं लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था की सेवा करने वाला समूचा राज्य-तन्त्र वही रहता है! जब तक इस पूरे तन्त्र का क्रान्ति के ज़रिये ध्वंस नहीं किया जाता, तब तक पूँजीवाद का बाल भी बाँका नहीं होने वाला! ज़ाहिर है कि महज़ बग़ावतें करने या गुस्सा निकालने से मज़दूर वर्ग मज़दूर इंक़लाब नहीं ला सकता है। इसके लिए एक क्रान्तिकारी विचारधारा और एक क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत है। यह क्रान्तिकारी पार्टी ही मज़दूर वर्ग को इंक़लाब की ओर ले जा सकती है। यह पार्टी ही बिखरे हुए जनता के संघर्षों को एक कड़ी में पिरो सकती है। ऐसी पार्टी ही देशव्यापी क्रान्तिकारी आन्दोलन को खड़ा कर सकती है और उसकी अगुवाई कर सकती है। एक ऐसी नयी क्रान्तिकारी देशव्यापी पार्टी खड़ा करना ही आज मज़दूर वर्ग के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। जब तक ऐसी इंक़लाबी मज़दूर पार्टी नहीं खड़ी की जाती है, तब तक हम हताशा के अन्धकार में ही जीते रहेंगे! तब तक हम नागनाथ और साँपनाथ में से किसी को चुनने की कवायद करते रहेंगे! इसलिए आज से ही ऐसी पार्टी खड़ी करने की मुहिम में जुटना होगा!

लेकिन इंक़लाबी पार्टी खड़ा करने के साथ ही हमें मज़दूर वर्ग की राजनीति की अन्य धाराओं को भी विकसित और संगठित करना होगा। हमें आज से ही अपने आपको अपनी क्रान्तिकारी पंचायतों में संगठित करना होगा। देश का मज़दूर वर्ग सबकुछ बनाता है। लिहाज़ा, वह सबकुछ चला भी सकता है। मज़दूर वर्ग को स्वयं राजनीतिक निर्णय लेना सीखना होगा; उसे ऐसी संस्थाएँ खड़ी करनी होंगी जिनमें वह एक वर्ग के तौर पर अपने हितों के लिए राजनीतिक फ़ैसले ले सके। और ऐसी संस्थाओं के तौर पर ही उसे मज़दूर बस्तियों और मुहल्लों में, गाँवों में, औद्योगिक क्षेत्रों में अपनी क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य पंचायतें खड़ी करनी होंगी जोकि आने वाली क्रान्तिकारी व्यवस्था में सत्ता के निकायों की भूमिका निभा सकें; ऐसी संस्थाएँ जहाँ मज़दूर अपने शासन-सम्बन्धी राजनीतिक फ़ैसले ले सकें! इसके लिए हमें भावी क्रान्ति के बाद मौक़ा नहीं मिलने वाला है। हमें अभी से ही समानान्तर जन-सत्ता की संस्थाएँ खड़ी करनी होंगी। इसके बिना मज़दूर वर्ग को फ़ैसला लेने की अपनी ताक़त पर कैसे भरोसा पैदा होगा? वह कैसे जान पायेगा कि वह समूचे देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में ले सकता है? उसे अपनी राजनीतिक क्षमता पर आत्मविश्वास कैसे पैदा होगा? और इस आत्मविश्वास के बिना क्या मज़दूर वर्ग मज़दूर क्रान्ति को अंजाम दे सकता है? क्या वह क्रान्ति के बाद सत्ता को सँभाल और चला सकता है? नहीं! इसलिए हमें इन्तज़ार नहीं करना चाहिए! अपनी मदद हमें ख़ुद करनी होगी और आज ही से हमें हर इलाक़े, हर मुहल्ले, हर बस्ती, हर क्षेत्र में अपनी क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य पंचायतें खड़ी करनी होंगी, एक वर्ग के तौर पर अपने हितों की पहचान करना सीखना होगा, इन वर्ग हितों के अनुसार निर्णय लेना सीखना होगा! हम यह कर सकते हैं और हमें यह करना ही होगा!

इंक़लाबी पार्टी और क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य पंचायतों के साथ ही, आज हमें एक नये क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की आवश्यकता है। मज़दूर वर्ग अपने दुश्मन के तौर पर समूचे पूँजीपति वर्ग की पहचान रोज़मर्रा के वर्ग संघर्ष के ज़रिये ही करता है। जब तक मज़दूर के सामने एक कारख़ाने का मालिक या कुछ कारख़ानों के मालिक दुश्मन के तौर पर नज़र आते हैं, तब तक वह मज़दूर अपने शोषण और उत्पीड़न के असल कारणों तक नहीं पहुँच पाता है। अभी तक वह यह नहीं समझ पाया है कि उसका दुश्मन एक मालिक, एक ठेकेदार या जॉबर नहीं है, बल्कि समूचा पूँजीपति वर्ग है। अभी वह पूँजीवाद-विरोधी नहीं बना है, अभी वह राजनीतिक तौर पर वर्ग सचेत

(पेज 9 पर जारी)

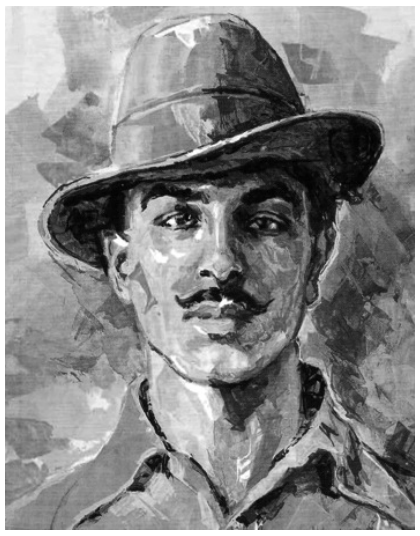

शहीदेआज़म भगतसिंह के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

मज़दूरों-मेहनतकशों के नायक को चुराने की बेशर्म कोशिशों में लगे धार्मिक फासिस्ट और चुनावी मदारी

पिछली 23 मार्च को भगतसिंह के पैतृक गाँव पंजाब के खटकड़कलाँ में बारी-बारी से तमाम चुनावी पार्टियों – अकाली दल-भाजपा, कांग्रेस से लेकर पीपीपी तक ने भगतसिंह के नाम को भुनाने का जो घिनौना नज़ारा पेश किया वह कोई नयी बात नहीं है। क्रान्तिकारियों के विचारों और जनता के दिलों में बसी उनकी यादों को मिटाने की कोशिशों में नाकाम रहने के बाद पिछले कुछ समय से ये चुनावी मदारी और धार्मिक जुनूनी फासिस्ट उनकी छवि को भुनाने की बेशर्म कोशिशों में लगे हुए हैं। खटकड़कलाँ में 23 मार्च को हुई रैलियाँ इन पार्टियों की चुनावी रैलियाँ थीं, उनमें भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत और उनके सपनों की कोई बात नहीं हुई, बस अपनी-अपनी पार्टियों के लिए वोट माँगने के लिए भगतसिंह के नाम का इस्तेमाल किया गया। भीड़ जुटाने के लिए मंच पर फूहड़ बाज़ारू नाच-गाने चलते रहे और शहीदों से कई गुना ज़्यादा चुनावी नेताओं के ज़िन्दाबाद के नारे लगते रहे।

पिछले दिनों भगतसिंह के परिवार के एक सदस्य यादविन्दर संधू ने उनके नाम को कलंकित करते हुए भगतसिंह की जेल नोटबुक के नये संस्करण के विमोचन के लिए नरेन्द्र मोदी को आमन्त्रण भेज दिया। यह अलग बात है कि इस पर हुए चौतरफ़ा विरोध के कारण मोदी को मन मसोसकर अपना आना रद्द करना पड़ गया। यह वही मोदी है जिसे भगतसिंह के बारे में इतनी ही जानकारी है कि उन्हें अण्डमान की जेल में क़ैद करवा दिया था! वैसे इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। आख़िर इन संघियों को क्रान्तिकारियों के बारे में सही जानकारी हो भी कैसे? जब सारा देश अंग्रेज़ों से आज़ादी की लड़ाई लड़ रहा था तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग ब्रिटिश हुकूमत के तलवे चाट रहे थे। जिस वक़्त भगतसिंह और उनके साथी हँसते-हँसते मौत को गले लगा रहे थे, ठीक उस समय, 15-24 मार्च 1931 के बीच संघ के संस्थापकों में से एक बी.एस. मुंजे इटली की राजधानी रोम में मुसोलिनी और दूसरे फासिस्ट नेताओं से मिलकर भारत में उग्र हिन्दू फासिस्ट संगठन का ढाँचा खड़ा करने के गुर सीख रहे थे। जब शहीदों की क़ुर्बानी से प्रेरित होकर लाखों-लाख हिन्दू-मुसलमान-सिख नौजवान ब्रिटिश सत्ता से टकराने के लिए सड़कों पर उतर रहे थे तो संघ के स्वयंसेवक मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने और शाखाओं में लाठियाँ भाँजने में लगे हुए थे और जनता की एकता को कमज़ोर बनाकर गोरी सरकार की सेवा कर रहे थे।

भाजपा और संघी गिरोह के संगठनों ने भगतसिंह का नाम लेना तो तभी बन्द कर दिया था जब भगतसिंह के विचार लोगों के बीच प्रचारित होने लगे और यह साफ़ हो गया कि वे मज़दूर क्रान्ति और कम्युनिज़्म के विचारों को मानते थे और साम्प्रदायिकता तथा धर्मान्धता के कट्टर विरोधी थे। लेकिन जनता के बीच भगतसिंह की बढ़ती लोकप्रियता को भुनाने के लिए इन फासिस्टों ने भगतसिंह को भी अपने झूठों और कुत्सा-प्रचार का शिकार बनाने की घटिया चालें चलनी शुरू कर दी हैं। इतिहास के प्रमाणित तथ्यों और दस्तावेज़ों को धता बताते हुए वे प्रचारित करते हैं कि भगतसिंह के नाम से मज़दूर क्रान्ति और समाजवाद के बारे में जो लेख और बयान छपते रहे हैं वे वास्तव में उनके हैं ही नहीं। कुछ वर्ष पहले संघ के भोंपू 'आर्गनाइज़र' और 'पाँचजन्य' का एक विशेष अंक इसी पर निकाला गया था जिसमें साबित करने की कोशिश की गयी थी कि भगतसिंह केवल एक राष्ट्रवादी थे और क्रान्ति के बारे में उनके जो भी विचार सामने आये हैं वह दरअसल कुछ वामपन्थी संगठनों और बुद्धिजीवियों की साज़िश है। पिछले करीब दो दशक से बड़े पैमाने पर भगतसिंह के साहित्य को प्रकाशित करके जन-जन तक पहुँचाने की कोशिश में लगे 'राहुल फ़ाउण्डेशन और 'जनचेतना' को नाम लेकर इसके कई लेखों में निशाना बनाया गया था। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने मेरठ, मथुरा और दिल्ली सहित कई जगहों पर 'जनचेतना' की पुस्तक प्रदर्शनियों पर हमले भी किये और भगतसिंह की पुस्तिका 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' को फाड़ने की भी कोशिश की। यह अलग बात है कि हर जगह तगड़ा प्रतिरोध होते ही वे कायरों की तरह भाग खड़े हुए।

पिछले 67 वर्षों से भगतसिंह के सपनों की हत्या करने में लगे कांग्रेसी भी आज मजबूरी में उनके नाम को भुनाने की कोशिश कर रहे हैं। इनकी सरकारों ने 1947 के बाद से ही भगतसिंह और उनके साथियों के क्रान्तिकारी विचारों को दबाने की साज़िशें कीं और आज़ादी की लड़ाई में उनके महान योगदान को छोटा करके पेश किया। इन विचारों को वे अपने लिए भी उतना ही ख़तरनाक मानते थे जितना अंग्रेज़ सरकार मानती थी। भगतसिंह और उनके साथी इस बात को समझने लगे थे कि कांग्रेस के झण्डे तले गाँधीजी ने व्यापक जनता के एक बड़े हिस्से को भले ही जुटा लिया हो, पर कांग्रेस उनके हितों की नुमाइन्दगी नहीं करती, बल्कि देशी धनिक वर्गों के हितों की नुमाइन्दगी करती है और उन्होंने लोगों को चेतावनी दी थी कि कांग्रेस की लड़ाई का अन्त किसी न किसी समझौते के रूप में ही होगा। भगतसिंह ने साफ़-साफ़ कहा था गोरे अंग्रेज़ों की जगह काले अंग्रेज़ों के गद्दी पर बैठ जाने से इस देश के मेहनतकशों को कुछ नहीं मिलेगा।

इनकी हरचन्द कोशिशों के बावजूद भगतसिंह के विचार देशभर में फैलते ही गये हैं और आधी-अधूरी आज़ादी की सच्चाई लोगों के सामने आने के साथ ही क्रान्तिकारियों की पुकार उनके दिलों में और पुरज़ोर ढंग से गूँजने लगी है। ऐसे में अब तरह-तरह के पाखण्डी, मक्कार और चुनावी मदारी भगतसिंह के नाम और छवि का इस्तेमाल करने की निर्लज्ज हरकतें करते दिखायी दे रहे हैं। पिछले दिनों चुनावी अखाड़े के नये जोकर अरविन्द केजरीवाल को एक टीवी चैनल पर बड़ी बेशर्मी से भगतसिंह की फोटो का इस्तेमाल कर अपनेआप को "क्रान्तिकारी" दिखाने की कवायद करते पकड़ा गया था। अन्ना हज़ारे, रामदेव और जनरल वी.के. सिंह जैसे धुर दक्षिणपंथियों से लेकर सुब्रत राय जैसे अपराधी भी भगतसिंह की फोटो अपने मंच पर टाँगने की हिमाक़त करने लगे हैं।

अब बहुत हो चुका! हमारे नायक को हमसे चुराने की इन गन्दी कोशिशों को नाकाम करने का एक ही तरीक़ा है, कि हम भगतसिंह के इंक़लाबी विचारों को पूरी ताक़त के साथ जनता के बीच लेकर जायें और उनके सपनों का हिन्दुस्तान बनाने की लड़ाई को आगे बढ़ाने में जी-जान से जुट जायें। हमें भगतसिंह के इन शब्दों को हर मज़दूर और हर नौजवान तक पहुँचाना होगा:

"क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ़ एक ही अर्थ हो सकता है – जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में यही है 'क्रान्ति', बाक़ी सभी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ान्ध को ही आगे बढ़ाते हैं। ...भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को – भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं – आगे आना है। ...साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज़ इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। ...क़ौम कांग्रेस के लाउडस्पीकर नहीं है, वरन् वे मज़दूर-किसान हैं, जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है। राष्ट्र स्वयं को राष्ट्रवाद के विश्वास पर ही हरकत में लायेगा, यानी साम्राज्यवाद और पूँजीपति की ग़ुलामी से मुक्ति के विश्वास दिलाने से। ...हमें याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रान्ति के अतिरिक्त न किसी और क्रान्ति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।"

"...हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति, अंग्रेज़ शासक या सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

– सत्यप्रकाश

भारत के मज़दूर वर्ग के सामने क्या विकल्प है?

(पेज 8 से आगे)

नहीं बना है। और ऐसा मज़दूर वर्ग कभी इंक़लाब नहीं कर सकता है, जोकि अपने दुश्मन वर्ग को न पहचानता हो। यह पहचान तभी हो सकती है, जब मज़दूर वर्ग अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए एक क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन नहीं खड़ा करता। आज देश का ट्रेड यूनियन आन्दोलन देश की मज़दूर आबादी के करीब 90 फ़ीसदी को समेटता ही नहीं है। संशोधनवादी और संसदीय वामपन्थी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें देश के मज़दूरों के महज़ 7-8 प्रतिशत हिस्से की नुमाइन्दगी करती हैं। यह छोटा-सा हिस्सा आमतौर पर बैंक, बीमा व अन्य बड़े सार्वजनिक उपक्रमों में स्थायी करारनामे पर काम करने वाली मज़दूर व कर्मचारी आबादी है, जिसका एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा मौजूदा व्यवस्था द्वारा सहयोजित कर लिया गया है, और उसे अब क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस नहीं होती। यह छोटा-सा कुलीन मज़दूर वर्ग सिर्फ़ वेतन-भत्तों की लड़ाई तक सीमित रहना चाहता है और संशोधनवादी ट्रेड यूनियनें इस छोटे-से हिस्से के वेतन-भत्तों की ही लड़ाई लड़ रही हैं। इनके अतिरिक्त देश में कल-कारख़ानों, खानों-खदानों में खटने वाला एक विशालकाय औद्योगिक मज़दूर वर्ग और साथ ही तथाकथित "स्वरोज़गार" में लगा एक विशालकाय अनौपचारिक मज़दूर वर्ग है जोकि निर्माण मज़दूर के रूप में, रिक्शे-ठेले खींचने वाले मज़दूरों के रूप में और इसी प्रकार के छोटे-मोटे काम-धन्धों में लगा हुआ है। ये ठेका, दिहाड़ी व अनौपचारिक मज़दूर देश की कुल मज़दूर आबादी का करीब 93 फ़ीसदी है और सबसे नारकीय कार्य व जीवन स्थितियों में रहता है। मौजूदा केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ इस मज़दूर आबादी के हितों की नुमाइन्दगी करते ही नहीं। यह मज़दूर आबादी कोई पिछड़ी हुई मज़दूर आबादी नहीं है, बल्कि यह कई क़िस्म के कामों में कुशल और कई प्रकार के यन्त्रों पर काम करने वाली एक ऐसी मज़दूर आबादी है जिसके पैरों में चक्का लगा हुआ है। यह विशालकाय मज़दूर आबादी सबसे क्रान्तिकारी और सबसे अधिक व्यवस्था-विरोधी है; यह वह आबादी है जो सबसे शिद्दत के साथ परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस करती है। एक नये क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की आवश्यकता है, जो इस बहुसंख्यक मज़दूर आबादी के हक़ों की हिफ़ाज़त के लिए संघर्ष करे। इसके लिए संसदीय वामपन्थियों समेत विभिन्न चुनावी पार्टियों से जुड़े केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों से स्वतन्त्र नयी क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों के निर्माण की आवश्यकता है। आज पहले से मौजूद चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों में घुसकर क्रान्तिकारी राजनीतिक व ट्रेड यूनियन कार्य आमतौर पर मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि इन ट्रेड यूनियनों में कोई आन्तरिक जनवाद नहीं है। आज देशभर में मज़दूरों की विशाल बहुसंख्या को पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संगठित करने और अपने हक़ों के लिए लड़ना सिखाने के लिए नये क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की ज़रूरत है। ऐसा ट्रेड यूनियन आन्दोलन ही पूँजीवादी व्यवस्था को उसके असम्भाव्यता के बिन्दु पर ले जा सकता है।

मज़दूर वर्ग की एक नयी क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण, देशभर में मेहनतकश जनता की समानान्तर सत्ता के रूप में क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य पंचायतों की स्थापना और साथ ही एक नये क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन का निर्माण आज हमारे सामने उपस्थित सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यभार हैं। हमारे पास यही विकल्प है! और हमें इसी को चुनना चाहिए। 67 वर्ष मौजूदा पूँजीवादी जनतन्त्र की असलियत को पहचानने के लिए काफ़ी होते हैं! 67 वर्ष नींद से जागने के लिए काफ़ी होते हैं!

पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रिपोर्ट

इक्कीसवीं सदी में सर्वहारा क्रान्ति के नये संस्करणों और नये समाजवादी प्रयोगों की तैयारी के लिए बीसवीं सदी में समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर अध्ययन – चिन्तन और बहस के ज़रिये सही नतीजों तक पहुँचना ज़रूरी है

पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी पिछले 10-14 मार्च तक इलाहाबाद में सम्पन्न हुई। इस बार संगोष्ठी का विषय था : 'समाजवादी संक्रमण की समस्याएँ'। संगोष्ठी में इस विषय के अलग-अलग पहलुओं को समेटते हुए कुल दस आलेख प्रस्तुत किये गये और देश के विभिन्न हिस्सों से आये सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों के बीच उन पर पाँचों दिन सुबह से रात तक गम्भीर बहसें और सवाल-जवाब का सिलसिला चलता रहा। संगोष्ठी में भागीदारी के लिए नेपाल से आठ राजनीतिक कार्यकर्ताओं, संस्कृतिकर्मियों व पत्रकारों के दल ने अपने देश के अनुभवों के साथ चर्चा को और जीवन्त बनाया।

संगोष्ठी का औपचारिक उद्घाटन करते हुए आयोजक अरविन्द स्मृति न्यास की मुख्य न्यासी मीनाक्षी ने अपने स्वागत वक्तव्य में कहा कि कॉमरेड अरविन्द जैसे योग्य, प्रतिभावान, ज़िम्मेदार और ऊर्जस्वी क्रान्तिकारी को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि सर्वहारा वर्ग की मुक्ति और भारतीय क्रान्ति के जिस लक्ष्य के प्रति वे अपनी आख़िरी साँस तक समर्पित रहे, उससे जुड़े सैद्धान्तिक-व्यावहारिक प्रयोगों का सिलसिला आगे बढ़ाया जाये और युवा क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ी तैयार करने की वैचारिक ज़मीन तैयार की जाये। अरविन्द स्मृति न्यास इसी लक्ष्य के प्रति समर्पित है।

संगोष्ठी का विषय-प्रवर्तन करते हुए प्रसिद्ध कवयित्री और सामाजिक कार्यकर्ता कात्यायनी ने कहा कि सोवियत संघ में 1956 से जारी छद्म समाजवाद का 1990 के दशक के शुरुआत तक आते-आते जब औपचारिक पतन हुआ तो बुर्जुआ कलमघसीट मार्क्सवाद की "शवपेटिका अन्तिम तौर पर क़ब्र में उतार दिये जाने" और "इतिहास के अन्त" का जो उन्माद भरा शोर मचा रहे थे, वह अब हालाँकि शान्त हो चुका है, परन्तु अब "मुक्त चिन्तन", स्वयंस्फूर्ततावाद, ग़ैरपार्टी क्रान्तिवाद और अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद के नानाविध भटकाव क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के भीतर से ही पैदा हो रहे हैं। ऐसे में समाजवादी संक्रमण से जुड़ी तमाम समस्याओं – उस दौरान सर्वहारा वर्ग, उसकी हिरावल पार्टी और सर्वहारा राज्यसत्ता के बीच अन्तर्सम्बन्ध, समाजवादी समाज में उत्पादन-सम्बन्ध और उत्पादक शक्तियों के अन्तरविरोध, वर्ग संघर्ष के स्वरूप और क्रमश: उन्नततर अवस्थाओं में संक्रमण से जुड़े सभी प्रश्नों पर अतीत के अनुभवों के सन्दर्भ में हमें बहस में उतरना होगा।

इसके बाद संगोष्ठी में पहला आलेख 'मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान' पत्रिका के सम्पादक अभिनव सिन्हा ने प्रस्तुत किया, जिसका शीर्षक था – "सोवियत समाजवादी प्रयोग और समाजवादी संक्रमण की समस्याएँ : इतिहास और सिद्धान्त की समस्याएँ"। इस आलेख में सोवियत संघ में 1917-1930 के दशक के दौरान किये गये समाजवादी प्रयोगों का विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। आलेख के अनुसार सोवियत संघ में समाजवादी क्रान्ति अपवादस्वरूप जटिल परिस्थितियों में सम्पन्न हुई और बोल्शेविक पार्टी ने निहायत ही प्रतिकूल परिस्थितियों में सर्वहारा सत्ता को क़ायम करने की ज़िम्मेदारी अपने हाथों में ली। सर्वहारा सत्ता के सुदृढ़ीकरण के बाद समाजवादी निर्माण के ऐतिहासिक कार्यभारों को पूरा करने की चुनौती विश्व इतिहास में पहली बार उभरकर आयी। सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के प्रयोगों का चरणबद्ध ब्योरा प्रस्तुत करते हुए आलेख प्रत्येक दौर में बोल्शेविक पार्टी के समक्ष उपस्थित बाह्य और आन्तरिक चुनौतियों-समस्याओं का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त इस दौर में पार्टी द्वारा की गयी कुछ विचारधारात्मक, रणनीतिक और रणकौशलात्मक ग़लतियों का भी विश्लेषण किया गया। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि आम तौर पर जिन बिन्दुओं पर सोवियत समाज की आलोचना की जाती है, उन बिन्दुओं पर वस्तुत: उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। सोवियत संघ में समाजवादी प्रयोगों की मौजूदा व्याख्याओं-आलोचनाओं की आलोचना प्रस्तुत करते हुए प्रदर्शित किया गया कि इन आलोचनाओं में कुछ भी नया नहीं है और अधिकांश तर्कों का जवाब लेनिन और स्तालिन के ही दौर में दिया जा चुका था।

आलेख प्रस्तुत करते हुए अभिनव सिन्हा

इस आलेख पर बहस में वेस्टर्न सिडनी विश्वविद्यालय के शोधकर्ता मिथिलेश कुमार, विस्थापन विरोधी जनविकास आन्दोलन, महाराष्ट्र के शिरीष मेढ़ी, इण्डियन एयरपोर्ट इम्पलाइज़ एसोसिएशन मुम्बई की दीप्ति गोपीनाथ, सिरसा से आये कश्मीर सिंह, जयपुर से आये पी.एल. शकुन, अहमदाबाद से आये डी.एस. राठौड़ ने हस्तक्षेप किया। संगोष्ठी के पहले दिन के सत्रों की अध्यक्षता नेपाल से आये प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव मित्रलाल पंज्ञानी, सिरसा से आये डॉ. सुखदेव और अरविन्द स्मृति न्यास की मुख्य न्यासी मीनाक्षी ने की। संचालन सत्यम ने किया।

दूसरे दिन के पहले सत्र में पंजाबी पत्रिका 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक सुखविन्दर का पेपर प्रस्तुत हुआ जिसका शीर्षक था "चीन में समाजवादी निर्माण, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति और माओवाद"। माओकालीन चीन में समाजवादी निर्माण के प्रयोगों का ब्योरा देने और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के विश्व-ऐतिहासिक अवदान को रेखांकित करने के साथ ही पेपर में 1949 में चीन की नव-जनवादी क्रान्ति से लेकर 1976 में माओ-त्से-तुङ की मृत्यु तक विभिन्न दौरों में चीनी पार्टी में चले दो लाइनों के बीच के संघर्ष का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया। चीन में 1949 की नव-जनवादी क्रान्ति के बाद सामन्ती शोषण की जड़ों को उखाड़ फेंकने के बाद 1950 के मध्य में 'महान अग्रवर्ती छलांग' लगाकर समाजवादी निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई, सहकारी खेती से सामूहिक खेती की ओर संक्रमण शुरू हुआ तथा उद्योग और व्यापार में भी समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की ओर संक्रमण शुरू हुआ। पेपर में इस पूरी प्रक्रिया के दौरान चीनी पार्टी के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों और उसके द्वारा उठाये गये क़दमों एवं इस समूची प्रक्रिया में समाज व पार्टी के भीतर जारी संघर्ष की विस्तारपूर्वक पड़ताल की गयी। इसके अतिरिक्त पेपर में सोवियत संघ के समाजवादी प्रयोगों की माओ द्वारा प्रस्तुत आलोचनात्मक विश्लेषण की भी चर्चा की गयी। साथ ही पेपर में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के दौर में चली 'महान बहस' के ऐतिहासिक महत्त्व की भी चर्चा की गयी। 1960 और 1970 के दशक में माओ के नेतृत्व में चलायी गयी महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलुओं को पेपर में विशेष महत्त्व दिया गया। मार्क्सवाद की क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रवर्तन के बाद लेनिन ने साम्राज्यवाद के दौर में इस विचारधारा में गुणात्मक इज़ाफ़ा किया जिसकी वजह से इसे मार्क्सवाद-लेनिनवाद कहा गया। पेपर में कहा गया कि माओ ने समाजवादी संक्रमण की दीर्घकालिक अवधि के दौरान पूँजीवाद की पुनर्स्थापना रोकने के लिए अधिरचना के क्षेत्र में सतत क्रान्ति का जो सिद्धान्त दिया, उसके सार्वभौमिक महत्त्व को देखते हुए आज के दौर में मार्क्सवादी विज्ञान को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ-त्से-तुङ विचारधारा की बजाय मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद कहना ज़्यादा सटीक होगा।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से आयीं लता द्वारा प्रस्तुत दूसरा पेपर अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की आम दिशा विषयक चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के ऐतिहासिक दस्तावेज़ के आधी सदी बाद एक विचारधारात्मक पुनर्मूल्यांकन पर केन्द्रित था। इस पेपर में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के ख़िलाफ़ चीनी पार्टी द्वारा चलायी गयी "महान बहस" के विचारधारात्मक महत्त्व को रेखांकित किया गया। साथ ही भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में पिछले कुछ दशकों के दौरान उत्पादन सम्बन्धों में आये बदलाव के मद्देनज़र 1963 की 'जनरल लाइन' के कार्यक्रम सम्बन्धी सूत्रीकरण की अप्रासंगिकता की चर्चा करते हुए कहा गया कि अभी भी भारत सहित दुनिया के बहुतेरे देशों के क्रान्तिकारी संगठन कठमुल्लावादी ढंग से इस कार्यक्रम से चिपके हुए हैं और कार्यक्रम के सवाल को विचारधारा के सवाल में गड्डमड्ड कर रहे हैं।

दूसरे दिन प्रस्तुत तीसरे पेपर का शीर्षक था – "स्तालिन और सोवियत समाजवाद", जिसे लुधियाना से आये डॉ. अमृत ने प्रस्तुत किया। इस पेपर में साम्राज्यवादियों, त्रात्सकीपन्थियों और "मुक्त चिन्तक मार्क्सवादियों" द्वारा स्तालिन के ऊपर लगाये जानेवाले मिथ्या आरोपों का तथ्यों और तर्कों सहित खण्डन किया गया। पेपर में ब्रेस्त-लितोव्स्क सन्धि और गृहयुद्ध के दौरान स्तालिन की भूमिका को लेकर फैलाये जाने वाले झूठ, "लेनिन की वसीयत" के मिथ्या प्रचार, एक देश में समाजवाद स्थापित करने सम्बन्धी विवाद, कृषि में सामूहिकीकरण और कुलक वर्ग के सफ़ाये के दौरान स्तालिन के नेतृत्व में पार्टी द्वारा उठाये गये क़दमों के बारे में दुष्प्रचार, 1936-38 के मुक़द्दमों और पार्टी के शुद्धीकरण की मुहिम के बारे में प्रचारित झूठों, दूसरे विश्व

(पेज 11 पर जारी)

पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रिपोर्ट

आलेख प्रस्तुत करते हुए हर्ष ठाकोर, सुखविन्दर, संगीत श्रोता और सनी सिंह

(पेज 10 से आगे)

युद्ध के पहले सोवियत-जर्मन अनाक्रमण सन्धि के बारे में इतिहास के विकृतीकरण और वैज्ञानिकों पर दमन सम्बन्धित झूठों का पर्दाफ़ाश किया गया। इसके अतिरिक्त स्तालिन द्वारा पार्टी के भीतर नौकरशाही के ख़िलाफ़ और जनवाद के लिए किये गये संघर्ष का सप्रमाण ब्योरा प्रस्तुत किया गया। साथ ही स्तालिन के दौर की कुछ गम्भीर विचारधारात्मक ग़लतियों को भी रेखांकित किया गया।

तीनों आलेखों की प्रस्तुति के बाद उन पर हुई बहस में हस्तक्षेप करने वालों में मुख्य थे : बिहार के रामाशीष गुप्ता और रघुनाथ प्रसाद, औरंगाबाद से बब्बन ठोके, जयपुर से पी.एल. शकुन, लुधियाना से नवकरण, लालजीत व दलजीत, औरंगाबाद से दत्तू, संगरूर से सन्दीप, दिल्ली के सनी, मुम्बई की दीप्ति गोपीनाथ और दिल्ली के तपीश मेन्दोला और अभिनव सिन्हा। भोजपुर से आये रामाशीष गुप्ता ने कहा कि महान नेताओं से अतीत में हुई ग़लतियों की बात करना साहस की बात है, लेकिन हमें इन ग़लतियों से सीखकर आगे का रास्ता निकालना है। उन्होंने कहा कि अगर कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल को भंग न किया गया होता तो मार्क्सवाद पर हो रहे हमलों का अच्छा जवाब दिया जा सकता था। इसका जवाब देते हुए सुखविन्दर ने कहा कि कॉमिण्टर्न को किसी नेता के व्यक्तिवाद के कारण नहीं बल्कि उस समय रूसी और चीनी पार्टियों सहित सभी कम्युनिस्ट पार्टियों की सहमति से भंग किया गया था। कॉमिण्टर्न का तत्कालीन विश्व पार्टी का स्वरूप नयी परिस्थितियों के अनुरूप नहीं था, लेकिन अगर एक नये स्वरूप में कॉमिण्टर्न बना रहता तो निश्चय ही आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष और मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत अच्छा होता। ऐसे किसी मंच की आज बहुत ज़रूरत है। दीप्ति गोपीनाथ ने कहा कि स्तालिन पर साम्राज्यवादी सबसे अधिक हमले करते हैं, क्योंकि वह संशोधनवाद और क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की विभाजक रेखा बन चुके हैं। हमें उनकी डटकर हिफ़ाज़त करनी चाहिए। उन्होंने इस सन्दर्भ में बेल्जियम कम्युनिस्ट पार्टी के सचिव लूडो मार्टेन्स की किताब 'अनदर व्यू ऑफ़ स्तालिन' का विशेष रूप से उल्लेख किया।

अभिनव ने रिवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी (आर.सी.पी., यू.एस.ए.) द्वारा प्रस्तुत 'न्यू सिन्थेसिस' के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा कि इस पार्टी के नेता बॉब अवाकियन मार्क्स के समय से ही मार्क्सवाद में 'रिडक्शनिज़्म' की बात करते हैं और इस यान्त्रिक भटकाव का कारण वे निषेध का निषेध के सूत्र को बताते हुए उसे ख़ारिज़ करते हैं। वे साम्राज्यवाद के दौर में कमज़ोर कड़ियों के टूटे बिना साम्राज्यवादी देशों में क्रान्ति की बात करते हैं, हालाँकि यह वर्तमान परिस्थितियों के मूल्यांकन से मेल नहीं खाता। रूस और चीन की क्रान्तियों में राष्ट्रवादी भटकाव और बुद्धिजीवियों के साथ व्यवहार सम्बन्धी उनकी बात को भी माना नहीं जा सकता। उनकी बातों में प्रथम दृष्टया जो सही है वह नया नहीं है और जो कुछ नया है वह सही नहीं है। निरपेक्ष सत्य की उनकी अवधारणा भी ग़ैरद्वन्द्वात्मक है। दूसरे दिन के सत्रों की अध्यक्षता मुम्बई के हर्ष ठाकोर, पटना के देवाशीष बराट और कवयित्री व सामाजिक कार्यकर्ता कात्यायनी ने की।

नेपाली क्रान्ति की समस्याओं पर केन्द्रित सत्र

संगोष्ठी के तीसरे दिन का पहला सत्र नेपाली क्रान्ति की समस्याओं और नेपाल के हाल के घटनाक्रम पर केन्द्रित था। इस सत्र में नेपाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन में आये गतिरोध, विपर्यय और विघटन के पीछे के कारणों पर गहन विचार-विमर्श और बहस-मुबाहसा हुआ। पहले सत्र में नेपाल पर केन्द्रित दो आलेख और दूसरे सत्र में महान बहस और माओवाद के प्रश्न पर दो आलेख प्रस्तुत हुए।

पहला आलेख नेपाल से संगोष्ठी में हिस्सा लेने के लिए आये कवि एवं सामाजिक कार्यकर्ता संगीत श्रोता का था, जिसका शीर्षक था - 'समाजवादी संक्रमण और नेपाली क्रान्ति का सवाल'। इस आलेख में नेपाल में 1996 और 2006 के बीच चले जनयुद्ध की उपलब्धियों को रेखांकित करते हुए कहा गया कि नेपाल में 240 वर्षों से चली आ रही राजशाही की संस्था का पतन मुख्यत: जनयुद्ध की शक्ति की वजह से हुआ। 2006 का अप्रैल जनान्दोलन भी जनयुद्ध के ही आधार पर सफल हो सका। परन्तु आज नेपाल का माओवादी आन्दोलन संशोधनवाद की ओर क़दम बढ़ा चुका है और उसमें दक्षिणपन्थी प्रवृत्तियाँ भी हावी हो रही हैं। शान्ति प्रक्रिया में प्रवेश तथा संविधान सभा और सरकार में सहभागी होने के साथ ही माओवादी आन्दोलन जनता से कट गया और शहरी मध्यवर्ग, बुर्जुआ वर्ग, राज्य के ऊपरी स्तर के नौकरशाह, दलाल पूँजीपति, शहरी कुर्सीतोड़ बुद्धिजीवियों और विदेशी शक्तियों के जाल में उलझता गया। पार्टी नेतृत्व पूरी तरह सरकारमुखी, सिंहदरबारमुखी और सुविधाभोगी होता चला गया। पार्टी में गुटबाज़ी और अनुशासनहीनता बढ़ती गयी। केन्द्रीय कमेटी का आकार बढ़ता गया परन्तु काडर के वैचारिक सांस्कृतिक शिक्षण-प्रशिक्षण पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। किरण वैद्य के नेतृत्व में नवगठित नेकपा (माओवादी) की भी स्थिति कमोबेश यही है।

अरविन्द स्मृति न्यास से जुड़े आनन्द सिंह द्वारा प्रस्तुत दूसरे आलेख - 'नेपाली क्रान्ति : विपर्यय का दौर और भविष्य का रास्ता' में कहा गया कि नेपाल में दूसरी संविधान सभा के चुनाव में एकीकृत नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (मा.) की हार के बाद यह स्पष्ट हो चुका है कि नेपाली क्रान्ति विच्युति, विचलन और भटकाव से आगे बढ़ विपर्यय के दौर में प्रविष्ट हो चुकी है। ऐसे में नेपाली क्रान्ति को सही रास्ते पर लाने के लिए विपर्यय के कारणों का निर्ममता से विश्लेषण करना होगा। पेपर में प्रस्तुत अवस्थिति के अनुसार नेपाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन में मौजूदा विपर्यय एक दशक पहले से पार्टी में पनपने वाली संशोधनवादी दिशा की तार्किक परिणति है। इस विचारधारात्मक भटकाव का प्रस्थान बिन्दु तब था जब प्रचण्ड ने समाजवादी संक्रमण के दौरान सर्वहारा अधिनायकत्व के बरक्स बहुदलीय संसदीय प्रणाली की वकालत करनी शुरू की। जब प्रचण्ड यह संशोधनवादी लाइन दे रहे थे तो पार्टी के भीतर इसके ख़िलाफ़ कोई संघर्ष नहीं हुआ। हालाँकि जब 2008 में प्रचण्ड ने इस लाइन को विस्तार देते हुए प्रतिस्पर्द्धात्मक संघीय गणराज्य की बात की तो पार्टी के भीतर किरण धड़े ने इसका विरोध किया, जिसकी वजह से इस लाइन को प्रत्यक्ष रूप से पीछे हटना पड़ा परन्तु यह सब कुछ राजनीति को कमान में रखने की बजाय संगठन को कमान पर रखकर समझौता फ़ार्मूले के रूप में हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि बुर्जुआ जनवाद के प्रति विभ्रम पार्टी में मौजूद रहा। पार्टी ने लाल सेना को सेना में विलय के नाम पर विघटित होने दिया, ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक लोकसत्ता के जो केन्द्र जनयुद्ध के दौरान उभरे थे, उन्हें विकसित करने के बजाय भंग कर दिया गया। पार्टी के मुखपत्रों में दक्षिणपन्थी भटकाव की स्पष्ट अभिव्यक्तियों को भी पेपर में चिह्नित किया गया। 2012 में पार्टी से अलग होकर नयी पार्टी का गठन करने वाले किरण-गजुरेल-बादल धड़े के अतीत के आचरण और हाल की अभिव्यक्तियों को इंगित करते हुए पेपर में कहा गया कि इस नयी पार्टी से भी यह उम्मीद बाँधने का कोई आधार नहीं नज़र आता कि यह नेपाली क्रान्ति को सही रास्ते पर ला सकती है। लेकिन चूँकि नेपाली जनता में मुक्ति की आकांक्षाएँ अभी जीवित हैं और विभिन्न संगठनों में क्रान्ति को समर्पित युवाओं की कमी नहीं है, इसलिए नयी पीढ़ी से निश्चय ही ऐसे युवा निकलेंगे जो नेपाली क्रान्ति के इतिहास का सार-संकलन करके उसे सही दिशा में ले जायेंगे।

नेपाली क्रान्ति से सम्बन्धित दोनों आलेखों पर चर्चा में 'दिशा संधान' के सह-सम्पादक सत्यम ने कहा कि नेपाल क्रान्ति की मुख्य समस्या विचारधारात्मक है। पार्टी राज्य और क्रान्ति विषयक लेनिन की शिक्षाओं को और पेरिस कम्यून से लेकर चिली और इण्डोनेशिया तक अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के अनुभवों को भुलाकर संसदवाद के विभ्रमों का बुरी तरह शिकार हो गयी। संसदीय चुनाव, सरकार में भागीदारी और संविधान सभा के मंच के इस्तेमाल करने को रणकौशल (टैक्टिक्स) के बजाय रणनीति (स्ट्रेटेजी) का सवाल बना देना उनकी ग़लतियों का मुख्य स्रोत था। सत्ता में आने के बाद एनेकपा (मा.) के नेतृत्व का पूरा व्यवहार येनकेन प्रकारेण सत्ता में बने रहने के प्रयासों में दिखता था। पार्टी की तमाम कार्रवाइयों से कार्यकर्ताओं और जनता के जुझारूपन और क्रान्तिकारी चौकसी ढीली पड़ती गयी और पार्टी जनता से दूर होती गयी। दूसरी संविधान सभा के चुनाव में पार्टी की हार को केवल प्रतिक्रियावादियों की साज़िश का नतीजा बताना असली कारण से मुँह चुराना है। बेशक, प्रतिक्रियावादियों की तरफ़ से घपले भी कराये ही गये होंगे, मगर एनेकपा (मा) ने ऐसी उम्मीद ही क्यों पाली थी कि बुर्जुआ ताक़तें चुनाव निष्पक्षता से होने देंगी। चर्चा में औरंगाबाद के दत्तू, लखनऊ के अमेन्द्र, दिल्ली के नवीन व अजय, गाजियाबाद के मनदीप और पंजाब के सुखविन्दर ने भी हिस्सा लिया।

नेपाल से आये दल की ओर से प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव मित्रलाल पंज्ञानी, राजेन्द्र पौडेल तथा संगीत श्रोता ने बहस में शिरकत करते हुए इन बातों से सहमति व्यक्त की कि नेपाली क्रान्ति की मुख्य समस्या विचारधारात्मक ही है। संगीत श्रोता द्वारा प्रस्तुत पेपर पर टिप्पणी करते हुए कई वक्ताओं ने कहा कि हालाँकि उसमें नेपाली क्रान्ति के मौजूदा संकट के लक्षणों को चिह्नित किया गया, परन्तु उसके मूल कारणों की समुचित पड़ताल नहीं की गयी है। इसके जवाब में संगीत श्रोता का कहना था कि उनका पेपर एक शोध पेपर नहीं, बल्कि विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत आलेख है। आनन्द के पेपर पर नेपाल के साथी राजेन्द्र ने टिप्पणी की उसमें एक ओर जनयुद्ध को दुस्साहसवादी बताया गया है, दूसरी ओर शान्ति प्रक्रिया के दौर को संशोधनवादी बताया गया है। आनन्द ने स्पष्ट करते हुए कहा कि पेपर में समूचे जनयुद्ध को दुस्साहसवादी नहीं कहा गया है, बल्कि जनयुद्ध के शुरुआती दौर में सैन्यवादी भटकाव की बात कही गयी है। इसके अलावा उसमें मौजूदा संकट की मुख्य वजह 2004 से ही पार्टी के दक्षिणपन्थी विचारधारात्मक भटकाव को बताया गया है।

तीसरे दिन के दूसरे सत्र में दो पेपर प्रस्तुत हुए। नौजवान भारत सभा, गुड़गाँव के राजकुमार द्वारा प्रस्तुत पेपर 1960 के दशक की शुरुआत में चीनी पार्टी द्वारा ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के ख़िलाफ़ चलायी गयी महान बहस के पचास वर्ष पूरे होने के बाद उसके विश्व ऐतिहासिक महत्त्व को रेखांकित करता था। दूसरा पेपर मुम्बई के हर्ष ठाकोर ने प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था - माओ विचारधारा या माओवाद।

संगोष्ठी के चौथे दिन दो महत्त्वपूर्ण पेपर प्रस्तुत किये गये और उन पर गहन विचार-विमर्श हुआ। पहला पेपर दिल्ली की शिवानी और बेबी ने प्रस्तुत किया, जिसका शीर्षक था - "उत्तर-मार्क्सवाद के कम्युनिज़्म : उग्रपरिवर्तन के नाम पर परिवर्तन की हर परियोजना को तिलांजलि देने की सैद्धान्तिकी।" इस पेपर में कहा गया कि उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-उपनिवेशवाद जैसी तमाम "उत्तर" विचारसरणियों के बुरी तरह पिट जाने के बाद अब मार्क्सवाद पर हमला करने के लिए उत्तर-मार्क्सवाद के रंगबिरंगे संस्करण सामने आये हैं। पूँजीवाद का विरोध करने के नाम पर छद्म मार्क्सवादी शब्दाडम्बर रचते हुए इन तमाम विचारों का निशाना मार्क्सवाद के बुनियादी उसूलों पर हमला करना ही है। आज इन हमलों को ताक़त देने के लिए बुर्जुआ सांस्कृतिक और बौद्धिक उपकरणों की पूरी ताक़त झोंक दी गयी है, ताकि पूँजीवाद के गहराते विश्वव्यापी संकट के दौर में बढ़ते आन्दोलनों और विकल्प तलाश रही जनता को दिग्भ्रमित किया जा सके। यह अनायास नहीं है कि पूँजीवाद अपने वर्चस्वकारी मैकेनिज़्म के ज़रिये सहज गति से क़िस्म-क़िस्म के "रैडिकल" बुद्धिजीवियों को पैदा कर रहा है जो मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं पर चोट कर रहे हैं। इन विचारधाराओं की आलोचना ज़रूरी है क्योंकि ये कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक हिस्से से लेकर छात्रों, बुद्धिजीवियों आदि के बीच विभ्रम पैदा करने का प्रयास कर रहे हैं।

पेपर में ऐलन बेज्यू के "कम्युनिज़्म" के विचार को परिवर्तन की परियोजना से क्रान्तिकारी अभिकरण छीनने की निर्लज्ज और हताश कवायद करार दिया गया है। इसके अलावा स्लावोय ज़िज़ेक के "कम्युनिज़्म एब्सकाण्डिटस' के

(पेज 12 पर जारी)

पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रिपोर्ट

(पेज 11 से आगे)

विचार को निठल्ला, निष्क्रिय और नुक़सानदेह सैद्धान्तिकीकरण बताया गया है। ज़िज़ेक अलग-अलग दार्शनिक व्यवस्थाओं में समानान्तर रेखाएँ खींचते हैं और फिर इन समानान्तर रेखाओं का इस्तेमाल समकालीन परिदृश्य की व्याख्या करने के लिए करते हैं। लेकिन यह विश्लेषण वास्तव में कहीं नहीं ले जाता और दुनिया को बदलना तो दूर, दुनिया की आंशिक तौर पर व्याख्या भी नहीं कर पाता। कुल मिलकर लकाँ के मनोविश्लेषण, लेवी स्ट्रॉस के उत्तरसंरचनावाद, उत्तरआधुनिकतावाद और तमाम अन्य मार्क्सवाद विरोधी विचार-सरणियों से मिलने वाली जूठन का इस्तेमाल करते हुए इनका दर्शन अपने आपको मार्क्स से ज़्यादा रैडिकल दिखलाने का प्रयास करता है और लगातार यह दिखलाने का प्रयास करता है कि मार्क्स क्या-क्या नहीं समझ पाये और वे कहाँ-कहाँ ग़लत थे। उत्तर-मार्क्सवादियों के नये सैद्धान्तिकीकरण की मूल बात है कि सर्वहारा वर्ग इनके लिए अनुपस्थित हो चुका है और टटपुँजिया वर्ग परिवर्तन का नया अगुवा है। पेपर के अनुसार एण्टोनियो नेग्री और माइकल हार्ट की अमूर्त अभौतिक, आकारविहीन सैद्धान्तिकी में पूँजीवाद एक अवैयक्तिक (इम्पर्सनल) शक्ति बन जाता है, प्रतिरोध अमूर्त चीज़ बन जाती है और प्रतिरोध करने वाले भी आकृतिविहीन वस्तु बन जाते हैं। यह पूरी अवधारणा बुनियादी मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर हमला करने के लिए ही गढ़ी गयी है। अर्नेस्टो लाक्लाऊ और चैण्टल माउफ़ की "उग्र परिवर्तनवादी जनवाद" की अवधारणा की भी आलोचना रखी गयी। निष्कर्ष के तौर पर कहा गया है कि उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रतिक्रियावादी चरित्र बेनकाब होने के बाद अब इन नये दार्शनिकों ने प्रत्यक्ष तौर पर पूँजीवाद विरोध की नयी भाव-भंगिमा अपनायी है और पूँजीवाद की "अपने क़िस्म की आलोचना" कर रहे हैं। इन तमाम उत्तर-मार्क्सवादियों की दार्शनिक आवारागर्दी की कठोर आलोचना की ज़रूरत है और इनके विचारों के वास्तविक मार्क्सवाद विरोधी चरित्र को साफ़ करने की ज़रूरत है।

दूसरा पेपर दिल्ली विश्वविद्यालय के सनी सिंह और अरविन्द ने प्रस्तुत किया, जिसका शीर्षक था – "बोलिवारियन विकल्प : विभ्रम और यथार्थ"। ह्यूगो शावेज़ के वेनेज़ुएला और बोलिविया जैसे लातिन अमेरिका के अन्य देशों में '21वीं सदी का समाजवाद' के नाम से जो 'बोलिवारियन विकल्प' प्रस्तुत किया जा रहा है, इस पेपर में उसकी दार्शनिक अवस्थिति का मार्क्सवादी नज़रिये से आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इसमें इस्तवान मेस्जारोस के संक्रमण सिद्धान्त और क्रान्ति रहित संक्रमण की बात की आलोचना रखते हुए कहा गया है कि उन्होंने मार्क्सवाद की धुरी छोड़ दी है। पेपर में माइकल लेबोवित्ज़ के राजनीतिक मॉडल और मार्ता आनेकर के सांगठनिक संशोधनवाद की आलोचना भी प्रस्तुत की गयी। लातिन अमेरिका में साम्राज्यवाद विरोध के इतिहास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए पेपर में बोलिवारियन क्रान्ति को साम्राज्यवाद विरोध की जनभावना पर खड़ा हुआ कल्याणवाद और "प्रगतिशील बोनापार्टवाद" बताया गया है। इसमें चार तत्वों का मिश्रण है लातिन अमेरिका में जनता के बीच साम्राज्यवाद के विरुद्ध ज़बरदस्त भावना की मौजूदगी, रैडिकल प्रगतिवादी बोनापार्टवाद, पेट्रो डॉलर की अर्थव्यवस्था से वित्तपोषित राजकीय कल्याणवाद और एक प्रकार का संघाधिपत्यवादी तृणमूल जनवाद। हालाँकि दुनियाभर में राष्ट्रीय प्रश्न के हल होने और नवस्वाधीन देशों में पूँजीवादी विकास मुकम्मिल मंज़िल तक पहुँचने के कारण वहाँ राष्ट्रीय बुर्जुआजी क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए अप्रांसगिक हो चुकी है और उसका कोई भी हिस्सा "राष्ट्रीय" नहीं रह गया है, लेकिन लातिन अमेरिका की विशिष्ट स्थितियों में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग एक मायने में प्रासंगिक बना हुआ है और शावेज़, इवो मोरालेस आदि की सत्ता अलग-अलग अर्थों में इसी प्रकार के साम्राज्यवाद-विरोधी, रैडिकल राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन ये विकल्प किसी भी रूप में पूँजीवादी व्यवस्था का विकल्प पेश नहीं करते, वे बस साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी हैं और वे स्वयं एक इजारेदारी रहित, कल्याणवादी, अल्पउपभोगवादी पूँजीवाद के ही पैरोकार हैं, जिसे कुछ निराश "वाम" बुद्धिजीवी अपनी निराशा के कारण समाजवाद का नया मॉडल समझ बैठे हैं।

दोनों आलेखों पर चली बहस में आजमगढ़ से आये अमरनाथ द्विवेदी, जयपुर के पी.एल. शकुन, दिल्ली के अविनाश भारती, जेएनयू के अक्षय काथे, गोरखपुर से प्रमोद, दिल्ली से अभिनव, सनी आदि ने हिस्सा लिया। अध्यक्षमण्डल में सिरसा के वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता कश्मीर सिंह, शहीद भगतसिंह क्लीनिक, लुधियाना के डॉ. अमृतपाल और नोएडा से आये तपीश मैन्दोला शामिल थे। संचालन आनन्द ने किया।

संगोष्ठी के पाँचवें और अन्तिम दिन यूरोपीय "स्वायत्त" वाम के विचारों और मज़दूर आन्दोलन पर इसके प्रभावों पर केन्द्रित वेस्टर्न सिडनी युनिवर्सिटी, आस्ट्रेलिया के शोधकर्ता मिथिलेश कुमार का आलेख 'द प्रॉमिस दैट नेवर वॉज़ : ए क्रिटिक ऑफ़ पोस्ट-1968 यूरोपियन "ऑटोनॉमस" लेफ़्ट' प्रस्तुत हुआ और पिछले चार दिनों के दौरान विभिन्न आलेखों पर चर्चा के दौरान उठे मुद्दों पर बातचीत जारी रही। आलेख में कहा गया कि आज दुनियाभर में एक उथल-पुथल का दौर है, पूँजीवाद के ख़िलाफ़ आन्दोलन हो रहे हैं। लेकिन इतिहास का यह सबक हमें नहीं भूलना चाहिए कि जब क्रान्तिकारी राजनीति और उसे निर्देशित करने वाली ताक़तें बदलते हालात में सही कार्रवाई करने के लिए वैचारिक और राजनीतिक रूप से तैयार न हों तो इसकी भारी क़ीमत चुकानी पड़ती है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद और ख़ासकर स्तालिन के निधन तथा सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 20वीं कांग्रेस में ख्रुश्चेव द्वारा फैलाये गये झूठों के प्रभाव में यूरोप में वाम राजनीति की अनेक प्रवृत्तियाँ उभरीं। यह आलेख अन्य की संक्षिप्त चर्चा के साथ इटली के 'ऑपेराइस्त' आन्दोलन और इससे निकली धाराओं पर केन्द्रित रहा, जिनका प्रभाव आज तेज़ी से फैल रहा है। अन्तोनियो नेग्री, मारियो ट्रोण्टी, बोलोन्या और रेनियरो पैंज़िएरी जैसे लोगों की मज़दूर आन्दोलन के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से में 'कल्ट' जैसी स्थिति बन गयी है। उनकी आलोचना करने वाले बहुत से लोग भी उनकी "मौलिकता" की बात करते हैं। आलेख में 'ऑपेराइज़्म' के उभार की पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए यह दिखाया गया कि किस प्रकार से इनकी "मौलिकता" मार्क्सवाद की पद्धति और दर्शन से विचलन का नतीजा है।

मिथिलेश ने कहा कि आज "राष्ट्रपारीय एक्टिविज़्म" द्वारा तीसरी दुनिया के अनेक देशों में रैडिकल और क्रान्तिकारी संघर्षों को सहयोजित कर लेने या उन्हें संस्थागत रूप देने के ज़रिये उन पर वर्चस्व क़ायम करने की एक ख़तरनाक प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। इसका एक रास्ता विकसित देशों की ट्रेड यूनियनों के ज़रिये भी है। भारत सहित तीसरी दुनिया के कई देशों में मज़दूर आन्दोलन में कुछ नये खिलाड़ी नज़र आ रहे हैं। इनमें यूनियनों के छद्मवेश में काम करने वाले एनजीओ, विकसित देशों की बड़ी यूनियनों के 'एक्टिविस्ट' से लेकर वाम के विभिन्न शेड्स से जुड़े लेबर एक्टिविस्ट तक शामिल हैं। दिलचस्प बात यह है कि ये नये खिलाड़ी यहाँ के कुछ "क्रान्तिकारी" संगठनों के साथ भी मिलकर काम कर रहे हैं। इनकी शब्दावली में भी बेहद समानता दिखायी देती है – मज़दूर आन्दोलन की 'स्वायत्तता', मज़दूरों की 'कम्युनिटी' आदि, कुछ ने तो हाल के संघर्षों को एक प्रकार के 'ऑक्युपाई' आन्दोलन के रूप में भी प्रस्तुत करने की कोशिश की है। यह सोचने की बात है कि ऐसे क्रान्तिकारी संगठनों के सिद्धान्त और व्यवहार में ऐसा क्या है जिससे वे इन खिलाड़ियों के साथ जुट जाते हैं।

इस आलेख पर हुई चर्चा में दीप्ति गोपीनाथ, अमरनाथ द्विवेदी, अभिनव सिन्हा, जेएनयू के अक्षय, सुखविन्दर आदि ने भाग लिया। नेपाल से आये राजेन्द्र पौडेल ने आलेख में उठायी गयी बातों से सहमति जताते हुए तीसरी दुनिया के देशों से बड़े पैमाने पर विकसित देशों में जाकर काम कर रहे प्रवासी मज़दूरों का सवाल उठाया। भारी पैमाने के इस प्रवासन ने इन मज़दूरों को संगठित करने से जुड़े कई सवालों को जन्म दिया है, जिन पर मज़दूर आन्दोलन को सोचना है। इस प्रश्न पर अभिनव और सत्यम ने भी अपने वक्तव्यों में चर्चा की। मिथिलेश ने आलेख पर उठे प्रश्नों पर अपनी बात रखते हुए आस्ट्रेलिया की एक यूनियन में अपने काम के अनुभव के आधार पर प्रवासी मज़दूरों को संगठित करने की समस्याओं की चर्चा की।

समापन सत्र में संगोष्ठी में उठे अहम सवालों पर हुई चर्चा में बिहार से आये अरुण ने सोवियत संघ और चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना और माओवाद की समझ स्पष्ट करने के लिए कुछ सवाल उठाये। जयपुर से आये पी.एल. शकुन के सवाल पर अभिनव सिन्हा ने कहा कि एसयूसीआई को उनके आलेख में प्रच्छन्न त्रात्स्कीपन्थी इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह भी भारत में क्रान्ति की मंज़िल तय करने में त्रात्स्की की ही तरह निगमनात्मक पद्धति अपनाते हैं। सुखविन्दर ने एसयूसीआई की पैस्सिव-रैडिकल राजनीति की आलोचना रखी। भोजपुर से आये रामाशीष गुप्ता तथा लुधियाना से आये ताज मोहम्मद ने भी चर्चा में भाग लिया।

अन्तिम दिन के अध्यक्षमण्डल के सदस्यों – दिल्ली विश्वविद्यालय के सनी सिंह, नेपाल के संगीत श्रोता तथा सत्यम ने संगोष्ठी के पाँचों दिन की चर्चा को समेटते हुए अपनी बात रखी। सनी ने कहा कि आज क्रान्तिकारी आन्दोलन के सामने मौजूद चुनौतियों का सामना करने के लिए ज़रूरी है कि हम भावना नहीं बल्कि विज्ञान पर पकड़ बनाकर काम करें। संगीत श्रोता ने कहा कि पाँच दिनों में समाजवादी संक्रमण पर हुई चर्चा से हमने बहुत कुछ सीखा है जो संकट के दौर से गुज़र रही नेपाली क्रान्ति से जुड़े लोगों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसी बहसों की निरन्तरता को हम वहाँ जारी रखेंगे। हम नेपाल लौटकर समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर संगोष्ठी आयोजित करने की सोच रहे हैं। अरविन्द स्मृति न्यास की आगामी संगोष्ठियों में भी नेपाल से भागीदारी बनी रहेगी।

सत्यम ने कहा कि आज समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर सोचना कोई अकादमिक प्रश्न नहीं है। इससे विचारधारा के बेहद अहम सवाल जुड़े हुए हैं जो भारत तथा दुनियाभर में क्रान्तिकारी आन्दोलनों को सीधे प्रभावित कर रहे हैं। हम उम्मीद करते हैं कि पिछली अरविन्द स्मृति संगोष्ठियों की ही तरह इस संगोष्ठी में शुरू हुई बहसें आगे भी विभिन्न मंचों पर जारी रहेंगी। आगामी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी भारतीय समाज की प्रकृति, उत्पादन सम्बन्धों और क्रान्ति की मंज़िल के सवाल पर करने की हम सोच रहे हैं। इस संगोष्ठी में प्रस्तुत सभी आलेख अरविन्द स्मृति न्यास की वेबसाइट पर उपलब्ध होंगे। इन्हें हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में पुस्तकाकार प्रकाशित करने पर जल्दी ही काम शुरू कर दिया जायेगा। पंजाबी, मराठी और नेपाली भाषाओं में अरविन्द स्मृति संगोष्ठियों के आलेखों के अनुवाद की योजना है।

'का. अरविन्द को लाल सलाम', 'का. अरविन्द तुम ज़िन्दा हो, हम सबके संकल्पों में' के नारों और शशि प्रकाश के गीत 'नये संकल्प लें फिर से, नये नारे गढ़ें फिर से, उठो संग्रामियो जागो, नयी शुरुआत करने का समय फिर आ रहा है...' की तपीश मैन्दोला द्वारा प्रभावशाली प्रस्तुति के साथ संगोष्ठी का समापन हुआ।

प्रस्तुति : मज़दूर बिगुल टीम

कॉमरेड अरविन्द के पचासवें जन्मदिवस पर सांस्कृतिक कार्यक्रम

विहान सांस्कृतिक मंच दिल्ली की टोली

पाँचवीं अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के तीसरे दिन कॉमरेड अरविन्द के पचासवें जन्मदिवस (12 मार्च) पर उनकी याद में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत में कॉमरेड अरविन्द को याद करते हुए सत्यम, आनन्द, अभिनव, योगेश और राजविन्दर ने उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को बड़ी आत्मीयता से याद किया। उन्होंने कहा कि का. अरविन्द को महज़ 44 वर्ष का जीवन मिला, जिसमें से 24 वर्ष उन्होंने सर्वहारा की मुक्ति के लिए अनवरत काम करते हुए होम कर दिये। एक ऐसे दौर में जब दुनियाभर में कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार अपने चरम पर था, कॉमरेड अरविन्द एक सच्चे योद्धा की भाँति वर्ग संघर्ष के मोर्चे पर अन्तिम साँस तक डटे रहे। वह एक सरल, सहृदय किन्तु कम्युनिस्ट उसूलों पर दृढ़ आस्था रखने वाले व्यक्ति थे। वे हम सबकी स्मृतियों में हमेशा जीवित रहेंगे और हमने उनके साथ मिलकर जो सपने देखे थे, उन्हें पूरा करने की राह पर हमें प्रेरित करते रहेंगे।

इसके बाद पंजाब से आयी 'दस्तक सांस्कृतिक मंच' की टोली और दिल्ली की 'विहान सांस्कृतिक मंच' की टोली ने अनेक हिन्दी, पंजाबी और स्पेनी क्रान्तिकारी गीतों और कविताओं की प्रस्तुति की। नेपाल से आये कवि संगीत श्रोता ने का. अरविन्द को समर्पित अपना एक नेपाली गीत प्रस्तुत किया।

मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी नेता व शिक्षक लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) के अवसर पर

जनवादी जनतन्त्र : पूँजीवाद के लिए सबसे अच्छा राजनीतिक खोल

"धन-दौलत" की सार्विक सत्ता जनवादी जनतन्त्र में ज़्यादा यक़ीनी इसलिए भी होती है कि वह राजनीतिक मशीनरी की अलग-अलग कमियों, पूँजीवाद के निकम्मे राजनीतिक खोल पर निर्भर नहीं होती। जनवादी जनतन्त्र पूँजीवाद के लिए श्रेष्ठतर सम्भव राजनीतिक खोल है और इसलिए (पालचीन्स्की, चेर्नोव, त्सेरेतेली और मण्डली की मदद से) इस श्रेष्ठतम खोल पर अधिकार करके पूँजी अपनी सत्ता को इतने विश्वसनीय ढंग से, इतने यक़ीनी तौर से जमा लेती है कि बुर्जुआ-जनवादी जनतन्त्र में व्यक्तियों, संस्थाओं या पार्टियों की कोई भी अदला-बदली उस सत्ता को नहीं हिला सकती।

हमें यह भी नोट करना चाहिए कि एंगेल्स सार्विक मताधिकार को भी पूर्णत: स्पष्टता के साथ बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व का अस्त्र कहते हैं।

...

मार्क्स ने लिखा था : "कम्यून संसदीय नहीं, बल्कि एक कार्यशील संगठन था, जो कार्यकारी और विधिकारी, दोनों कार्य साथ-साथ करता था...

...तीन या छ: साल में एक बार यह तय करने के बजाय कि शासक वर्ग का कौन सदस्य संसद में जनता का प्रतिनिधित्व तथा दमन करेगा (ver-und sertreten) सर्वमताधिकार को अब कम्यूनों में संगठित जनता के उसी प्रकार काम में आना था, जिस प्रकार अपने व्यवसाय के लिए मज़दूर, मैनेजर तथा मुनीम तलाश करनेवाले हर एक मालिक के लिए व्यक्तिगत मताधिकार काम में आता है।"

...

केवल संसदीय-सांविधानिक राजतन्त्रों में ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक जनवादी जनतन्त्रों में भी बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था का सच्चा सार कुछ वर्षों में एक बार यह फ़ैसला करना ही है कि शासक वर्ग का कौन सदस्य संसद में जनता का दमन और उत्पीड़न करेगा।

...

"संसदीय नहीं, बल्कि कार्यशील संगठन" – आज के संसदबाज़ों और सामाजिक-जनवाद के संसदीय "पालतू कुत्तों" के मुँह पर यह भरपूर तमाचा है! अमेरिका से स्विट्ज़रलैण्ड तक, फ़्रांस से इंग्लैण्ड, नार्वे आदि तक चाहे किसी संसदीय देश को ले लीजिये – इन देशों में "राज्य" के असली काम की तामील पर्दे की ओट में की जाती है और उसे महक़मे, दफ़्तर और फ़ौजी सदर-मुक़ाम करते हैं। संसद को "आम जनता" को बेवक़ूफ़ बनाने के विशेष उद्देश्य से बकवास करने के लिए छोड़ दिया जाता है। यह बात उतनी सच्ची है कि रूसी जनतन्त्र तक में, जो एक बुर्जुआ-जनवादी जनतन्त्र है, संसदीय व्यवस्था की ये सारी बुराइयाँ असली संसद के बनने से पहले ही फ़ौरन ज़ाहिर हो गयीं। सड़ी हुई कूपमण्डूकता के स्कोबेलेव और त्सेरेतेली, चेर्नोव और बवक्सेन्त्येव जैसे सूरमा सोवियतों तक को अत्यन्त घृणित बुर्जुआ संसदीयता के ढंग से गन्दा करने में सफल हो गये हैं, उन्हें महज़ गप्पबाज़ी के अड्डों में बदल दिया गया है। सोवियतों के अन्दर श्रीमान "समाजवादी" मन्त्रिगण गाँवों के भोले-भाले लोगों को लफ़्फ़ाज़ी और प्रस्तावों से ठग रहे हैं। सरकार के अन्दर निरन्तर जोड़-तोड़ चल रही है, जिससे कि एक ओर तो अधिक से अधिक समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेंशेविकों को बारी-बारी से इज़्ज़त और आमदनी की नौकरियों की "दावत" में हिस्सेदार बनाया जा सके और दूसरी ओर, जनता का "ध्यान भी बँटा रहे"। और तब तक "राज्य" का असली "काम" सरकारी दफ़्तर और फ़ौजी सदर-मुक़ाम "चलाते" हैं!

...

बुर्जुआ समाज की ज़रख़रीद तथा गलित संसदीय व्यवस्था की जगह कम्यून ऐसी संस्थाएँ क़ायम करता है, जिनके अन्दर राय देने और बहस करने की स्वतन्त्रता पतित होकर प्रवंचना नहीं बनतीं, क्योंकि संसद-सदस्यों को खुद काम करना पड़ता है, अपने बनाये हुए क़ानूनों को खुद ही लागू करना पड़ता है, उनके परिणामों की जीवन की कसौटी पर स्वयं परीक्षा करनी पड़ती है और अपने मतदाताओं के प्रति उन्हें प्रत्यक्ष रूप से ज़िम्मेदार होना पड़ता है। प्रतिनिधिमूलक संस्थाएं बरक़रार रहती हैं, लेकिन विशेष व्यवस्था के रूप में, क़ानून बनाने और क़ानून लागू करने के कामों के बीच विभाजन के रूप में, सदस्यों की विशेषाधिकार-पूर्ण संस्थाओं के बिना जनवाद की, सर्वहारा जनवाद की भी कल्पना हम कर सकते हैं और हमें करनी चाहिए, अगर बुर्जुआ समाज की आलोचना हमारे लिए कोरा शब्दजाल नहीं है, अगर बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को उलटने की हमारी इच्छा गम्भीर और सच्ची हैं, न कि मेंशेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की तरह, शीडेमान, लेजियन, सेम्बा और वानउरवेल्डे जैसे लोगों की तरह मज़दूरों के वोट पकड़ने के लिए "चुनाव" का नारा भर है।

('राज्य और क्रान्ति' से)

कॉ. शालिनी की पहली बरसी पर क्रान्तिकारी श्रद्धांजलि

मज़दूर वर्ग की मुक्ति के मिशन को समर्पित था उनका जीवन

कॉ. शालिनी

युवा क्रान्तिकारी और जनमुक्ति समर की वैचारिक-सांस्कृतिक बुनियाद खड़ी करने के अनेक क्रान्तिकारी उपक्रमों की एक प्रमुख संगठनकर्ता कॉमरेड शालिनी को हमारे बीच से गये एक वर्ष बीत गया। पिछले वर्ष 29 मार्च की रात को जब पैन्क्रियास के घातक कैंसर ने उन्हें हमसे छीन लिया तब उनकी उम्र सिर्फ़ 38 वर्ष थी।

कॉ. शालिनी एक ऐसी कर्मठ, युवा कम्युनिस्ट संगठनकर्ता थीं, जिनके पास अठारह वर्षों के कठिन, चढ़ावों-उतारों भरे राजनीतिक जीवन का समृद्ध अनुभव था। कम्युनिज़्म में अडिग आस्था के साथ उन्होंने एक मज़दूर की तरह खटकर राजनीतिक काम किया। एक व्यापारी और भूस्वामी परिवार की पृष्ठभूमि से आकर, शालिनी ने जिस दृढ़ता के साथ सम्पत्ति-सम्बन्धों से निर्णायक विच्छेद किया और जिस निष्कपटता के साथ कम्युनिस्ट जीवन-मूल्यों को अपनाया, वह आज जैसे समय में दुर्लभ है और अनुकरणीय भी। उन्होंने अपनी अन्तिम घड़ी तक माओ त्से-तुङ के इन शब्दों को सच्चे अर्थ में अपने जीवन में उतारने की कोशिश की : "एक कम्युनिस्ट को किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में अपने निजी हितों को प्रथम स्थान नहीं देना चाहिए; उसे इन्हें अपने राष्ट्र और आम जनता के हितों के मातहत रखना चाहिए। इसलिए स्वार्थीपन, काम में ढिलाई, भ्रष्टाचार, मशहूरी की ख़्वाहिश इत्यादि प्रवृत्तियाँ अत्यन्त घृणास्पद हैं, जबकि नि:स्वार्थपन, भरपूर शक्ति से काम करना, जनता के कार्य में तन-मन से जुट जाना और चुपचाप कठोर परिश्रम करते रहना ऐसी भावनाएँ हैं जो इज़्ज़त पाने लायक हैं।"

कॉ. शालिनी 'जनचेतना' पुस्तक प्रतिष्ठान की सोसायटी की अध्यक्ष, 'अनुराग ट्रस्ट' के न्यासी मण्डल की सदस्य, 'राहुल फ़ाउण्डेशन' की कार्यकारिणी सदस्य और परिकल्पना प्रकाशन की निदेशक थीं। प्रगतिशील, जनपक्षधर और क्रान्तिकारी साहित्य के प्रकाशन तथा उसे व्यापक जन तक पहुँचाने के काम को भारत में सामाजिक बदलाव के संघर्ष का एक बेहद ज़रूरी मोर्चा मानकर वे पूरी तल्लीनता और मेहनत के साथ इसमें जुटी हुई थीं। अपने छोटे-से जीवन के अठारह वर्ष उन्होंने विभिन्न मोर्चों पर सामाजिक-राजनीतिक कामों को समर्पित किये।

इस दौरान, समरभूमि में बहुतों के पैर उखड़ते रहे। बहुतेरे लोग समझौते करते रहे, पतन के पंककुण्ड में लोट लगाने जाते रहे, घोंसले बनाते रहे, दूसरों को भी दुनियादारी का पाठ पढ़ाते रहे या अवसरवादी राजनीति की दुकान चलाते रहे। मगर शालिनी इन सबसे रत्तीभर भी प्रभावित हुए बिना अपनी राह चलती रहीं। एक बार जीवन लक्ष्य तय करने के बाद पीछे मुड़कर उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। यहाँ तक कि उनके पिता ने भी जब निहित स्वार्थ और वर्गीय अहंकार के चलते पतित होकर क्रान्तिकारी राजनीति और संगठनों के विरुद्ध कुत्सा-प्रचार और चरित्र-हनन का रास्ता अपनाया तो उनसे पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने में शालिनी ने पलभर की भी देरी नहीं की।

बलिया में 1974 में जन्मी कॉमरेड शालिनी का राजनीतिक जीवन बीस साल की उम्र में ही शुरू हो गया था। उन्हें जीने के लिए बहुत कम समय मिला, मगर इतने समय में ही उन्होंने बहुत से मोर्चों पर बहुत सारा काम किया। गोरखपुर में युवा स्त्री कार्यकर्ताओं के एक कम्यून में रहने के दौरान शालिनी ने स्त्री मोर्चे पर, सांस्कृतिक मोर्चे पर और छात्र मोर्चे पर काम किया। 1998-99 के दौरान वह लखनऊ आकर राहुल फ़ाउण्डेशन से मार्क्सवादी साहित्य के प्रकाशन एवं अन्य गतिविधियों में भागीदारी करने लगीं। 1999 से 2001 तक उन्होंने गोरखपुर में 'जनचेतना' पुस्तक प्रतिष्ठान की ज़िम्मेदारी सँभाली। इसी दौरान

नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत करते हुए शालिनी

गोरखपुर में दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा में काम करते हुए शालिनी जन अभियानों, आन्दोलनों, धरना-प्रदर्शनों आदि में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती रहीं। वे एक कुशल अभिनेत्री भी थीं और अनेक मंचीय तथा नुक्कड़ नाटकों में उन्होंने काम किया। जनचेतना पुस्तक केन्द्र में बैठने के साथ ही वे अन्य साथियों के साथ झोलों में प्रगतिशील किताबें और पत्रिकाएँ लेकर घर-घर और कॉलेजों-दफ़्तरों में जाती थीं। नवम्बर 2002 से दिसम्बर 2003 तक इलाहाबाद में 'जनचेतना' की प्रभारी के रूप में काम करने के साथ ही अन्य स्त्री कार्यकर्ताओं के साथ शालिनी इलाहाबाद में छात्रों-युवाओं तथा नागरिकों के बीच विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेती रहीं। 2004 से लेकर दिसम्बर 2012 के अन्त में बीमार होने तक वह लखनऊ स्थित 'जनचेतना' के केन्द्रीय कार्यालय और पुस्तक प्रतिष्ठान का काम सँभालती रहीं। इसके साथ ही वह 'परिकल्पना,' 'राहुल फ़ाउण्डेशन' और 'अनुराग ट्रस्ट' के प्रकाशन सम्बन्धी कामों में भी हाथ बँटाती रहीं। 'अनुराग ट्रस्ट' के पुस्तकालय, वाचनालय, बाल कार्यशालाएँ, बच्चों की पत्रिका आदि की ज़िम्मेदारियाँ उठाने के साथ ही कॉ. शालिनी ने ट्रस्ट की वयोवृद्ध मुख्य न्यासी दिवंगत कॉ. कमला पाण्डेय की जिस लगन और लगाव के साथ सेवा और देखभाल की, वह कोई सच्चा सेवाभावी कम्युनिस्ट ही कर सकता था। 2011 में 'अरविन्द स्मृति न्यास' का केन्द्रीय पुस्तकालय लखनऊ में तैयार करने का जब निर्णय लिया गया तो उसकी व्यवस्था की भी मुख्य ज़िम्मेदारी शालिनी ने ही उठायी। इतनी सारी विभागीय ज़िम्मेदारियों के साथ ही शालिनी आम राजनीतिक प्रचार और आन्दोलनात्मक सरगर्मियों में भी यथासम्भव हिस्सा लेती रहती थीं। बीच-बीच में वह लखनऊ की ग़रीब बस्तियों में बच्चों को पढ़ाने भी जाती थीं। लखनऊ के हज़रतगंज में रोज़ शाम को लगने वाले जनचेतना के स्टॉल पर पिछले कई वर्षों से सबसे ज़्यादा शालिनी ही खड़ी होती थीं। आज भी लखनऊ और आसपास ही नहीं बल्कि देश के विभिन्न हिस्सों और नेपाल तक से आने वाले पाठक, बुद्धिजीवी और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता उन्हें बड़े सम्मान और आत्मीयता के साथ याद करते हैं।

केजरीवाल की आर्थिक नीति...

(पेज 16 से आगे)

करते हैं। वे उन मुद्दों को लेते हैं जिनसे जनता परेशान हो लेकिन जिनसे समस्त पूँजीवादी ढाँचे पर चोट न पड़ती हो, और फिर उन मुद्दों को ही सारी समस्याओं की जड़ बताकर जनता का पूरा ध्यान तथा गुस्सा उन पर मोड़ देते हैं। बढ़ती आबादी को सारी समस्याओं का कारण बताना, या एक धर्म, संप्रदाय, देश, क़ौम या जाति के लोगों को समस्याओं का कारण बताने का फासीवादी ढंग भी इसी साज़िश का ही हिस्सा है। इसी तरह भ्रष्टाचार (जिससे लोग परेशान भी हैं) को ही सभी समस्याओं का कारण बताया जाता है। भ्रष्टाचार को मुख्य मुद्दा बनाना और उसके ख़िलाफ़ "आन्दोलन" खड़ा करने का काम ख़ास तौर पर 1990 के दशक से ही सचेत रूप में शुरू हुआ। नौकरशाही के अन्दर के भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की तरफ़ से 'पारदर्शिता कोष' बनाया गया जिसमें कई देशों की सरकारों ने धन डाला है। यह मामला तब और स्पष्ट हो जाता है जब पता लगता है कि इस कोष को विश्व बैंक के अलावा फोर्ड फाउंडेशन और राकफेलर जैसे कई पूँजीवादी घराने भारी आर्थिक सहायता देते हैं। अरबों डॉलर की इस राशि की मदद से भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम चलाने वाली "गैर-सरकारी संस्थाएं" (एन.जी.ओ) खड़ी की गयीं। इसी के तहत भारत में 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' मुहिम शुरू हुई जिसको विश्व बैंक समेत कई बड़े पूँजीपति घरानों की तरफ़ से मदद हासिल थी। इसी संस्था के माध्यम से केजरीवाल ने राजनीति के मंच पर छलाँग मारने की शुरुआत की थी। वैसे यह भी एक दिलचस्प तथ्य है कि जब यह पारदर्शिता कोष क़ायम किया गया तब केजरीवाल भी अमेरिका में थे।

इस पृष्ठभूमि में केजरीवाल के विचारों को समझा जा सकता है। जब केजरीवाल कहते हैं कि "हमें निजी व्यापार को बढ़ावा देना होगा" तो इसका मतलब होता है कि हमें पूँजीपतियों की लूट को बढ़ावा देना होगा, उनको और खुली छूट देनी पड़ेगी। जब वह कहते हैं कि "सरकार का काम व्यापार के लिए सुरक्षित माहौल देना है" तो वह किन लोगों से सुरक्षा की बात करते हैं? उनका मतलब है इस कारोबार में लूटे जा रहे मेहनतकश लोगों की तरफ़ से इस लूट के ख़िलाफ़ और अपने अधिकारों के लिए लड़े जा रहे संघर्षों से सुरक्षा, "कारोबार" शुरू करने के लिए ज़मीनों से बेदखल किये जा रहे किसानों के विद्रोहों से सुरक्षा। केजरीवाल का कहना है कि पूँजीपति ही दौलत और रोज़गार पैदा करते हैं। लेकिन अगर समाज के विज्ञान को समझें तो पूँजीपति नहीं बल्कि श्रम करने वाले लोग हैं जो दौलत पैदा करते हैं, पूँजीपति तो उनकी पैदा की हुई दौलत को हड़प जाते हैं। इसी तरह पूँजीपति रोज़गार देकर लोगों को नहीं पाल रहे, बल्कि वास्तव में मज़दूर वर्ग इन परजीवियों को जिला रहा है। इसी तरह जब केजरीवाल अपने बयानों में "ईमानदारी" का रोना रोते हैं ("ईमानदारी से काम करो, जायज़ मुनाफ़ा कमाओ") या भ्रष्टाचार का शोर मचाते हैं तो उसका साफ़ मतलब है कि मेहनतकश लोगों की लूट के माल को ईमानदारी से आपस में बाँट लो, जिसका जितना हक़ बनता है वह उतना ही ले, उससे अधिक लेने के लिए आपस में न झगड़ो। एक तरफ़ वह निजी व्यापार को प्रोत्साहित करने, पूँजीवाद का विकास करने की बात करते हैं और दूसरी तरफ़ भ्रष्टाचार को ख़त्म करने की बात करते हैं। ये दोनों अन्तरविरोधी बातें हैं, क्योंकि पूँजीवाद अपनेआप में भ्रष्टाचार है, पूँजीवाद के अन्त के बिना भ्रष्टाचार का अन्त असम्भव है।

अलग-अलग मंचों से सामने आयी केजरीवाल की आर्थिक नीति का असल तत्व यह है कि देशी-विदेशी पूँजी द्वारा मेहनतकश लोगों की लूट के रास्ते में से हर तरह की रुकावटें हटा दी जायें। मज़दूरों के ख़ून-पसीने की एक-एक बूँद निचोड़ने के लिए आतुर लुटेरे, मुनाफ़ाख़ोर परजीवी पूँजीपतियों को केजरीवाल की बातें ऐसी लग रहीं हैं - "ओ मेरे साथियो! अब कांग्रेस, भाजपा या कोई अन्य पार्टी तुम्हारी बढिया ढंग से सेवा नहीं कर सकती! और पार्टियाँ तुम्हारी सेवा करते-करते लोगों में बहुत बदनाम हो चुकी हैं, इसलिए हमारी सेवाओं का लाभ उठाओ। हम पूरे मुस्तैदी, ईमानदारी और जोश से तुम्हारी सेवा करेंगे।"

व्यापार को प्रोत्साहित करना, कारोबार में सरकारी दखल बन्द करना, "इंस्पेक्टर राज" ख़त्म करना आदि वही बातें हैं जिनके लिए विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि और भारत के तमाम पूँजीपति लम्बे समय से शोर मचाते रहे हैं। इसका मतलब नवउदारवादी नीतियों (निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण) को पूरे ज़ोर-शोर से लागू करना है, क्योंकि यही नीतियाँ आज भारतीय पूँजीवाद की ज़रूरत है। केजरीवाल के ये बयान असल में पूँजीपति वर्ग को "पटाने", अपनेआप को उनका वफ़ादार साबित करने की कोशिशों का हिस्सा है। वह बताना चाहता है कि वह इक्का-दुक्का पूँजीपतियों (जैसे कि अंबानी) का ज़ुबानी विरोध करने के बावजूद पूरे पूँजीपति वर्ग के विरोध में नहीं है बल्कि उनका सच्चा सेवक है। आज नवउदारवादी नीतियों को ज़ोर-शोर से लागू करना भारतीय पूँजीवाद की ज़रूरत है। इसीलिए पूँजीपति वर्ग के बड़े हिस्से ने नरेन्द्र मोदी पर दाँव लगा रखा है क्योंकि वह वादा कर रहा है कि डण्डे के ज़ोर पर, मेहनतकशों को दबा-कुचलकर जनता को निचोड़ डालने के रास्ते की हर बाधा को वह दूर कर देगा। उसका तथाकथित "गुजरात मॉडल" वास्तव में और कुछ भी नहीं है। लेकिन इस विकल्प के अपने ख़तरे भी हैं। शासक वर्ग भी जानते हैं कि अन्धाधुन्ध लूट और दमन मेहनतकशों के गुस्से के विस्फोट के हालात पैदा कर सकता है। दुनिया के कई देशों में जनता के उग्र आन्दोलनों को देखकर भी वे आशंकित हैं। इसीलिए पूँजीपतियों का एक हिस्सा केजरीवाल के विकल्प को भी खुला रखने के पक्ष में है। केजरीवाल ने भी स्पष्ट कर दिया है कि वह नवउदारवादी नीतियों को लागू करने में कांग्रेस या भाजपा से पीछे नहीं रहने वाला, बशर्ते भारतीय पूँजीपति उसे इस "सेवा" का मौक़ा दें।

भारत में विदेशी निवेश के मसले पर भी केजरीवाल ने अपना स्टैंड बदल लिया है। दिल्ली में सरकार बनाने के समय दिल्ली में खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर रोक लगाने की बात करने वाले केजरीवाल का आजकल कहना है कि वह "किसी भी तरह की देशी या विदेशी पूँजी के ख़िलाफ़ नहीं है" और "परचून के क्षेत्र में विदेशी निवेश के मामले पर हम गहराई में विचार कर रहे हैं।" पिछले ढाई दशक से मेहनतकशों के अधिकारों में कटौती तथा श्रम क़ानूनों को पूँजी के पक्ष में बदलने का सिलसिला जारी है। केजरीवाल भी यही कह रहा है कि "इन्स्पेक्टर राज ख़त्म होना चाहिए जो कारख़ाना मालिकों को डराते हैं। एक छोटी-सी दुकान पर भी 31 इन्स्पेक्टर आते हैं।" ध्यान देने वाली बात यह है कि श्रम विभाग में कर्मचारियों की संख्या तो पहले ही कम की जा रही है। अकेले लुधियाना में ही जहाँ पर हज़ारों छोटी-बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ हैं जिनमें दसियों लाख मज़दूर काम करते हैं, श्रम विभाग में केवल 25-30 मुलाज़िम बचे हैं। 2002 के सरकारी आँकड़े के हिसाब से ही अगर इन्स्पेक्टर ईमानदारी से निरीक्षण करने लगें तो हर फैक्टरी की बारी पाँच साल में एक बार आयेगी! आज तो यह आँकड़ा दस साल में एक बार तक पहुँच गया होगा। इस तरह साफ़ है कि एक छोटी दुकान पर 31 इन्स्पेक्टर आने का कितना बड़ा झूठ बोला जा रहा है। यह भी सब जानते हैं कि ये इन्स्पेक्टर उद्योगपतियों को कितना "डराते" हैं! वैसे "आप" सरकार को अगर मौक़ा मिला तो वह इन नीतियों को कैसी "ईमानदारी" से लागू करेगी, इसकी एक झलक दिल्ली में उनके श्रम मन्त्री गिरीश सोनी दिखा ही चुके हैं, जिसकी ख़ुद की चमड़े की फ़ैक्टरी में न्यूनतम वेतन, आठ घण्टे काम सहित कोई भी श्रम क़ानून लागू नहीं हो रहे थे।

केजरीवाल किन लोगों के पक्ष में खड़े हैं, यह बात इसी से साफ़ हो जाती है कि अपने बयानों में उन्होंने भारत के मेहनतकश लोगों के पक्ष में एक शब्द नहीं बोला है, मेहनतकशों को लूटने वाले उद्योगपतियों को एक भी फटकार नहीं लगायी है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक देश के उद्योगों में काम करने वाले 93 प्रतिशत मज़दूर बुनियादी अधिकारों से भी वंचित हैं। न्यूनतम वेतन, आठ घण्टे काम, बोनस, ई.एस.आई, डबल रेट से ओवरटाइम, दुर्घटनाओं एवं बीमारियों से सुरक्षा के प्रबन्ध तथा मुआवज़ा, साप्ताहिक तथा अन्य छुट्टियाँ, पहचान पत्र जैसे मूल अधिकार भी छोटे-बड़े पूँजीपति लागू नहीं करते। मज़दूर 12-12, 14-14 घण्टे हाड़तोड़ मेहनत करने के लिए मजबूर हैं। मगर बेशर्मी की सभी हदें पार करते हुए इन कामचोर पूँजीपतियों के बारे में केजरीवाल फ़रमाते हैं कि वे 24-24 घण्टे काम करते हैं और ईमानदार लोग हैं! भारतीय पूँजीपतियों की मण्डली के आगे अपने भाषण में भावुक होकर वह बोल गया कि "दिल्ली में एक ऐसा औद्योगिक क्षेत्र भी है जहाँ पर न बिजली है, न पानी है, न सड़कें हैं, पता नहीं वहाँ उद्योगपति कैसे काम चला रहे हैं?" मगर दिल्ली सहित पूरे भारत में बिन बिजली, पानी, सड़कों के रहने वाले करोड़ों लोगों की बात करते हुए उसे मोतियाबिन्द उतर आता है। "आम आदमी" का पक्षधर कहलाने वाले केजरीवाल की आर्थिक नीति में इसका भी कोई ज़िक्र नहीं आता कि भारत के करोड़ों मेहनतकश लोगों को स्वास्थ्य सुविधा देना, हर बच्चे की शिक्षा का प्रबन्ध करना तथा हर काम करने योग्य आदमी के लिए रोज़गार का प्रबन्ध करना सरकार का काम है और उसके पास इसके लिए क्या नीति है। उसका सिर्फ़ यही कहना है कि सरकार को व्यापार नहीं करना चाहिए, उसका काम निजी व्यापार को सुरक्षा का माहौल देना है और पूँजीपति ही रोज़गार देने का काम करेंगे। मतलब कि शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र का भी पूर्ण निजीकरण हो जाना चाहिए।

मगर सवाल उठता है कि विकल्प क्या है? भाजपा तथा कांग्रेस जैसी पार्टियों से लोग तंग आ चुके हैं और उनकी असलियत अब सबको पता है। इसलिए बहुत से लोग "आप" को एक विकल्प के रूप में देख रहे हैं। लोगों में इस बात को लेकर जाना ज़रूरी है कि खोखली नारेबाज़ी के बावजूद केजरीवाल वास्तव में भाजपा तथा कांग्रेस जैसे राजनीतिक मदारियों से अलग नहीं है। इससे आगे यह बताने की ज़रूरत है कि "आप," भाजपा, कांग्रेस या फिर लाल चोंच वाले संसदमार्गी वामपन्थी तोते ही नहीं, बल्कि यह समूची चुनावी व्यवस्था लोगों को कुछ नहीं दे सकती, लोग चाहे किसी को भी वोट दें, उनकी हालत सुधरने वाली नहीं है। नंगी लूट, शोषण, दमन, अत्याचार और भ्रष्टाचार से सच्ची मुक्ति तभी होगी जब मेहनतकश अवाम संगठित होकर अपनी पूरी ताकत इस पूँजीवादी ढाँचे को तबाह करने में लगाये और एक समाजवादी व्यवस्था खड़ी करे। ऐसी व्यवस्था में उत्पादन के संसाधनों के मालिक मुट्ठीभर लोग नहीं होंगे बल्कि उन पर पूरे समाज का नियन्त्रण होगा और उत्पादन का वितरण भी समाज के हाथों में होगा। उत्पादन मुट्ठीभर लोगों के मुनाफ़े को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि समाज की ज़रूरतों के हिसाब से होगा। राज्य सत्ता थोड़े-से मालिकों द्वारा बहुसंख्यक जनता को दबाने का साधन नहीं होगी, बल्कि यह ताक़त बहुसंख्या के हाथों में हो जिससे वह अपने खोये हुए "स्वर्ग" को वापस पाने के लिए नयी सामाजिक व्यवस्था को तबाह करने के पूँजीपति वर्ग के मंसूबों को नाकाम कर सके। इस बुनियाद से मानवता ऐसे समाज की दिशा में आगे क़दम बढ़ायेगी जहाँ वर्गों का अस्तित्व ख़त्म हो जायेगा, मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण ख़त्म हो जायेगा तथा दमन के एक साधन के रूप में राज्य की ज़रूरत ही नहीं रहेगी। आज मेहनतकश लोगों की मुक्ति ऐसा समाज निर्मित करने की कोशिशों से ही सम्भव है जिसके बारे में केजरीवाल भी अच्छी तरह से जानते हैं और इसीलिए बड़े स्पष्ट शब्दों यह बोलते हुए भाग खड़े होते हैं – "यह कुत्सा प्रचार है कि हम समाजवादी हैं और हर चीज़ का राष्ट्रीकरण कर देंगे।"

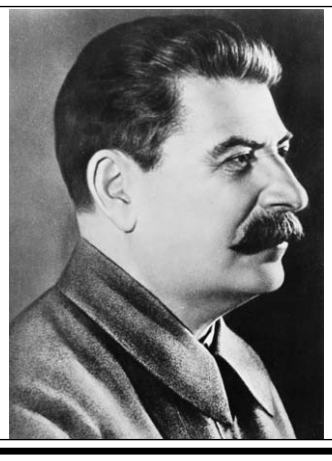

मेरे लिए यह कल्पना करना कठिन है कि एक बेरोज़गार भूखा व्यक्ति किस तरह की "निजी स्वतन्त्रता" का आनन्द उठाता है। वास्तविक स्वतन्त्रता केवल वहीं हो सकती है जहाँ एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का शोषण और उत्पीड़न न हो; जहाँ बेरोज़गारी न हो, और जहाँ किसी व्यक्ति को अपना रोज़गार, अपना घर और रोटी छिन जाने के भय में जीना न पड़ता हो। केवल ऐसे ही समाज में निजी और किसी भी अन्य प्रकार की स्वतन्त्रता वास्तव में मौजूद हो सकती है, न कि सिर्फ़ काग़ज़ पर। – *जोसेफ़ स्तालिन*

“महान अमेरिकी जनतन्त्र” के “निष्पक्ष चुनाव” की असली तस्वीर

अप्टन सिंक्लेयर के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास ‘जंगल’ के कुछ अंश

यूर्गिस को ब्राउन कम्पनी में काम करते हुए तीन हफ़्ते हुए थे, जब एक दोपहर उसके पास रात की पाली में चौकीदारी का काम करने वाला एक आदमी आया और पूछा कि क्या वह नागरिकता के काग़ज़ात लेना चाहता है? यूर्गिस को इसका मतलब नहीं मालूम था, लेकिन उस आदमी ने इसके फ़ायदे समझाये। पहली बात तो यह कि उसका कुछ ख़र्च नहीं होगा और उसे बिना पैसा कटे आधे दिन की छुट्टी मिल जायेगी। और फिर चुनाव के समय वह वोट दे सकेगा – और यह कोई मामूली बात नहीं है। यूर्गिस ने ख़ुशी-ख़ुशी मंज़ूरी दे दी और चौकीदार ने फ़ोरमैन से बात कर उसे छुट्टी दिलवा दी। हालाँकि बाद में वह जब शादी के लिए छुट्टी माँग रहा था तो उसे इंकार कर दिया गया। लेकिन यहाँ मज़दूरी सहित छुट्टी मिल रही थी – न जाने किस चमत्कार से। वह उस आदमी के साथ गया जिसने कई और नये-नये आये विदेशी मज़दूरों को इकट्ठा किया था। इनमें पोलिश, लिथुआनियाई और स्लोवाक थे। बाहर चार घोड़ों वाली बड़ी-सी गाड़ी खड़ी थी, जिसमें पन्द्रह-बीस आदमी पहले से थे। यह शहर के नज़ारे देखने का अच्छा मौक़ा था और मुफ़्त बियर भी मिल रही थी; पूरी मण्डली को ख़ूब मज़ा आया। शहर के बीच में पहुँचकर गाड़ी एक बड़ी-सी पत्थर की इमारत के सामने रुकी जहाँ एक अफ़सर ने उनका इण्टरव्यू लिया। उसके पास सारे काग़ज़ात तैयार थे, सिर्फ़ नाम भरे जाने थे। हर आदमी ने बारी-बारी से शपथ ली, जिसका एक शब्द भी उसकी समझ में नहीं आया और फिर उसे मोटे काग़ज़ पर छपा एक सुन्दर दस्तावेज़ थमाया गया, जिस पर संयुक्त राज्य अमेरिका का राज्यचिह्न और बड़ी-सी लाल मुहर लगी हुई थी। उसे बताया गया कि वह गणतन्त्र का नागरिक बन चुका है और अब वह ख़ुद राष्ट्रपति के बराबर है।

एक-दो महीने बाद यूर्गिस की इस आदमी से फिर मुलाक़ात हुई, जिसने उसे बताया कि मतदाता सूची में नाम कहाँ लिखाना है। और फिर जब चुनाव का दिन आया तो पैकिंग हाउसों में एक नोटिस लगा दी गयी कि जो लोग वोट डालना चाहते हों, वह सुबह नौ बजे तक छुट्टी ले सकते हैं और उसी रात चौकीदार यूर्गिस और बाक़ी नये लोगों को एक सैलून के पीछे वाले कमरे में ले गया और उन्हें दिखाया कि मतपत्र पर कैसे और कहाँ ठप्पा लगाना है। सुबह उसने हरेक को दो-दो डॉलर दिये और उन्हें मतदान-स्थल पर ले गया, जहाँ एक पुलिसवाला सिर्फ़ यह देखने के लिए तैनात था कि वे अपना काम ठीक से कर लें। यूर्गिस को इस ख़ुशनसीबी पर बड़ा गर्व अनुभव हो रहा था, लेकिन घर पहुँचने पर उसे योनास ने बताया कि उसने तो चार डॉलर के बदले तीन बार वोट डाले हैं।

और अब यूनियन में यूर्गिस को ऐसे लोग मिले, जिन्होंने इस रहस्य का मतलब उसे समझाया। अब उसे पता चला कि रूस और अमेरिका में यह अन्तर है कि यहाँ लोकतान्त्रिक सरकार है। यहाँ राज करने और जमकर कमाई करने वाले अफ़सरों के लिए ज़रूरी होता है कि पहले वे जनता द्वारा चुने जायें और इसलिए बेईमानों के दो प्रतिद्वन्द्वी गुट थे, जिन्हें राजनीतिक पार्टियाँ कहा जाता था और जो सबसे ज़्यादा वोट ख़रीदता था, वही सरकार बनाता था। बीच-बीच में चुनाव में मुकाबला बहुत काँटे का हो जाता था और ऐसे ही समय में ग़रीब आदमी की क़ीमत थोड़ी बढ़ जाती थी। स्टाकयार्ड में ऐसा सिर्फ़ राष्ट्रीय और प्रान्तीय चुनावों के समय होता था, क्योंकि स्थानीय चुनावों में डेमोक्रेटिक पार्टी हमेशा हावी रहती थी। इसलिए इस इलाक़े का असली शासक डेमोक्रेटिक पार्टी का स्थानीय अध्यक्ष था। छोटे कद के इस आयरिश आदमी का नाम माइक स्कली था। स्कली प्रान्तीय पार्टी में भी एक महत्त्वपूर्ण पद पर था और कहा जाता था कि शहर का मेयर भी उससे दबता था। वह कहता था कि सारा स्टाकयार्ड उसकी जेब में है। वह बहुत अमीर आदमी था – पूरे इलाक़े के हर ग़लत धन्धे में उसका हाथ था। यहाँ आने के पहले दिन यूर्गिस और ओना ने कूड़े से भरा जा रहा जो विशाल गड्ढा देखा था, उसका मालिक स्कली ही था। गड्ढा ही नहीं, ईंट का भट्ठा भी उसी का था। पहले उसने मिट्टी निकालकर उनसे ईंटें बनाकर बेचीं और अब सारे शहर का कचरा उस गड्ढे में भरवा रहा था, ताकि वहाँ मकान बनाकर वह लोगों को बेच सके। ईंटें भी वह नगरपालिका को अपने दाम पर बेचता था और नगरपालिका अपनी गाड़ियों में भरकर उन्हें ले जाती थी। सड़ते हुए पानी से भरा पास का दूसरा गड्ढा भी उसी का था और वही उस पर से बर्फ़ निकालकर बिकवाता था। इतना ही नहीं उसे अपने भट्ठे के लिए पानी का टैक्स भी नहीं चुकाना पड़ता था और उसने बर्फ़ख़ाना नगरपालिका की लकड़ी से बनवाया था, जिसके लिए उसने एक भी पैसा नहीं दिया था। अख़बारों में यह ख़बर छप गयी थी और काफ़ी हंगामा मचा था, लेकिन स्कली ने पैसे देकर एक आदमी से सारा गुनाह कबूल करवा लिया था और बाद में उसे देश से बाहर भेज दिया था। कहा जाता था कि उसने अपना ईंट भट्ठा भी इसी तरीक़े से बनाया था और उसे बनाने वाले मज़दूरों का भुगतान नगरपालिका ने किया था। लेकिन लोगों से ये बातें निकलवाने के लिए काफ़ी जोर लगाना पड़ता था, क्योंकि वे इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहते थे और वैसे भी माइक स्कली का साथ देने में ही फ़ायदा था। वह अगर एक रुक्का लिख दे तो पैकिंग हाउसों में किसी को भी आसानी से काम मिल जाता था; वह ख़ुद भी बहुत सारे आदमी रखता था और उनसे सिर्फ़ आठ घण्टे काम लेता था और सबसे अच्छी मज़दूरी देता था। इसके चलते उसके बहुत से प्रशंसक थे, जिन्हें मिलाकर उसने “वार हूप लीग” बनायी थी। इसका क्लब हाउस यार्डों के ठीक बाहर बना हुआ था। यह शिकागो का सबसे बड़ा क्लब था और वहाँ अकसर ही इनामी मुक्केबाज़ी होती थी। कभी-कभी मुर्गों या कुत्तों की लड़ाई करवायी जाती थी, जिस पर जमकर जुआ चलता था। इलाक़े के सारे पुलिसवाले इस लीग के सदस्य थे और इन ग़ैरक़ानूनी लड़ाइयों को रोकने के बजाय इनके टिकट बेचते थे। इन लोगों को “इण्डियन” कहा जाता था। यूर्गिस को नागरिकता दिलाने के लिए ले जाने वाला आदमी भी इन्हीं में से था। चुनाव के दिन सैकड़ों की संख्या में ये आदमी जेब में नोटों की गड्डियाँ और इलाक़े के हर सैलून में मुफ़्त दारू की पर्चियाँ लेकर घूमते रहते थे। लोगों का कहना था कि सारे सैलून मालिकों के लिए भी “इण्डियन” होना ज़रूरी था वरना वे न तो इतवार के दिन धन्धा कर पाते और न ही अपने पीछे वाले कमरों में जुआ खिलवा पाते। इसी तरह दमकल विभाग की सारी नौकरियाँ स्कली के हाथ में थी और स्टाकयार्ड में चलने वाले बाक़ी सारे काले धन्धों में भी उसका हाथ था। वह ऐशलैण्ड एवेन्यू पर बहुत सारे फ़्लैट बनवा रहा था और वहाँ ओवरसियर का काम कर रहा आदमी नगरपालिका से सीवर इंस्पेक्टर की तनख़्वाह पा रहा था। पानी के पाइपों के इंस्पेक्टर को मरे और दफ़नाये हुए एक साल बीत चुका था, लेकिन कोई आदमी अब भी उसकी तनख़्वाह उठा रहा था। फुटपाथों का इंस्पेक्टर वार हूप कैफ़े में बार-कीपर का काम करता था – और महकमे में उसका असली काम यह था कि स्कली का साथ न देने वाले हर दुकानदार का जीना हराम कर दे।

....

और इस तरह यूर्गिस को शिकागो की जरायम की दुनिया के ऊँचे तबकों की एक झलक मिली। इस शहर पर नाम के लिए जनता का शासन था, लेकिन इसके असली मालिक पूँजीपतियों का एक अल्पतन्त्र था। और सत्ता के इस हस्तान्तरण को जारी रखने के लिए अपराधियों की एक लम्बी-चौड़ी फ़ौज की ज़रूरत पड़ती थी। साल में दो बार, बसन्त और पतझड़ के समय होने वाले चुनावों में पूँजीपति लाखों डॉलर मुहैया कराते थे, जिन्हें यह फ़ौज ख़र्च करती थी – मीटिंगें आयोजित की जाती थीं और कुशल वक्ता भाड़े पर बुलाये जाते थे, बैण्ड बजते थे और आतिशबाजियाँ होती थीं, टनों पर्चे और हज़ारों लीटर शराब बाँटी जाती थी। और दसियों हज़ार वोट पैसे देकर ख़रीदे जाते थे और ज़ाहिर है अपराधियों की इस फ़ौज को साल भर टिकाये रहना पड़ता था। नेताओं और संगठनकर्ताओं का ख़र्चा पूँजीपतियों से सीधे मिलने वाले पैसे से चलता था – पार्षदों और विधायकों का रिश्वत के ज़रिये, पार्टी पदाधिकारियों का चुनाव-प्रचार के फ़ण्ड से, वकीलों का तनख़्वाह से, ठेकेदारों का ठेकों से, यूनियन नेताओं का चन्दे से और अख़बार मालिकों और सम्पादकों का विज्ञापनों से। लेकिन इस फ़ौज के आम सिपाहियों को या तो शहर के तमाम विभागों में घुसाया जाता था या फिर उन्हें सीधे शहरी आबादी से ही अपना ख़र्चा-पानी निकालना पड़ता था। इन लोगों को पुलिस महकमे, दमकल और जलकल के महकमे और शहर के तमाम दूसरे महकमों में चपरासी से लेकर महकमे के हेड तक के किसी भी पद पर भर्ती किया जा सकता था। और बाक़ी बचा जो हुजूम इनमें जगह नहीं पा सकता था, उसके लिए जरायम की दुनिया मौजूद थी, जहाँ उन्हें ठगने, लूटने, धोखा देने और लोगों को अपना शिकार बनाने का लाइसेंस मिला हुआ था। क़ानून के मुताबिक़ इतवार को शराब बेचने पर पाबन्दी थी और इसमें सैलून वालों को पुलिस की शरण में पहुँचा दिया था और उनके बीच साँठ-गाँठ ज़रूरी बना दी थी। क़ानून के मुताबिक़ वेश्यावृत्ति पर पाबन्दी थी और इसने “मैडमों” को भी इस गठबन्धन में शामिल कर लिया था। यही हाल जुआघर चलाने वालों का, और ऐसे हर औरत-मर्द का था जो किसी तरह की ग़ैरक़ानूनी कमाई करता था और उसका एक हिस्सा पुलिस को देने के लिए तैयार था। बटमार और राहजन, जेबकतरे और उठाईगिरे, चोरी का माल ख़रीदने वाले, मिलावटी दूध, सड़े हुए फल और बीमार जानवरों को माँस बेचने वाले, गन्दगी से भरे लॉज चलाने वाले, नक़ली डॉक्टर और सूदखोर, भीख मँगवाने वाले और कुश्तियों पर दाँव लगवाने वाले, घुड़दौड़ के दलाल, रण्डी खाने के दल्ले, गोरी चमड़ी वाले गुलामों के सौदागर और कमसिन लड़कियों को पटाने में माहिर लोग – ये तमाम अपराधी और भ्रष्टाचारी एक ही गठबन्धन में शामिल थे और राजनीतिज्ञों और पुलिस के साथ उनका ख़ून का रिश्ता था। अकसर ये सब एक ही आदमी होता था – पुलिस कप्तान उस वेश्यालय का मालिक होता था जिस पर छापा मारने का वह नाटक करता था, राजनीतिज्ञ अपने सैलून से अपनी पार्टी का असली दफ़्तर चलाता था। “हिंकीडिंक” या “बाथहाउस जॉन” या उस क़िस्म के दूसरे लोग शिकागो के सबसे बदनाम अड्डों के मालिक थे और वे ही नगर परिषद के सबसे धाकड़ सदस्य भी थे जो शहर की सड़कों को पूँजीपतियों के हाथों बेच डालते थे; और क़ानून को ठेंगे पर रखने वाले जुआड़ी और गुण्डे और सारे शहर को आतंकित किये रहने वाले चोर और लुटेरे उनके अड्डों के ख़ास मेहमान होते थे। चुनाव के दिन बुराई और अपराध की ये तमाम शक्तियाँ मिलकर एक हो जाती थीं। वे बता सकते थे कि उनके इलाक़े में कितने वोट किधर पड़ेंगे, इसमें एक-दो फ़ीसदी ही इधर-उधर होता था। और एक घण्टे की सूचना पर वे इसकी दिशा बदल भी सकते थे।

क्रान्तिकारी कवि ‘पाश’ के शहादत दिवस 23 मार्च के अवसर पर

मेरा अब हक़ बनता है
मैंने टिकट ख़र्च कर
तुम्हारे लोकतन्त्र का नाटक देखा है
अब तो मेरा नाटकहॉल में बैठकर
हाय हाय कहने और चीख़ें मारने का
हक़ बनता है
तुम ने भी टिकट देते समय
टके भर की छूट नहीं दी
और मैं भी अपनी पसन्द का बाज़ू पकड़कर
गद्दे फाड़ डालूँगा
और परदे जला डालूँगा

– पाश

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

केजरीवाल की आर्थिक नीति :
जनता के नेता की बौद्धिक कंगाली या जोंकों के सेवक की चालाकी

पिछले कुछ समय से भारत के राजनीतिक तमाशे में एक नया मदारी हाज़िर हुआ है और काफ़ी चर्चा में है। मज़दूर बिगुल के पिछले अंकों में पाठक उसके उभार, उसके सामाजिक आधार, उसकी विचारधारा के तत्व और उसके सम्भावित भविष्य की चर्चा पढ़ चुके हैं, लेकिन तब से लेकर इस तमाशे में काफ़ी कुछ घट चुका है, कई नाटकीय मोड़ आ चुके हैं जैसेकि ठेकाप्रथा बन्द करने के वायदे को पूरा करवाने के लिए इकट्ठा हुए अध्यापकों को धमकी देना, डी.टी.सी. के हड़ताल पर बैठे ड्राइवरों, कण्डक्टरों की तरफ़ से केजरीवाल को भगाया जाना, 6 फ़रवरी को दिल्ली सचिवालय पर इकट्ठा हुए मज़दूरों को यह कहकर साफ़ मना करना कि "हमें मालिकों, ठेकेदारों के हितों का भी ख़्याल रखना है", अन्य पार्टियों की तरह वोट बटोरने के लिए धर्म और जाति का इस्तेमाल करना, खाप पंचायतों की सरेआम तरफ़दारी करना, 700 लीटर पानी और 50 फ़ीसदी बिजली बिल कटौती के "पूरे" किये वायदों की पोल खुलना, दिल्ली में भ्रष्टाचार कम होने का झूठ बोलना और फिर सच्चाई सामने आने पर माफ़ी माँगना आदि।

यहाँ हम इन घटनाओं के विस्तार में न जाते हुए सिर्फ़ केजरीवाल के आर्थिक एजंडे पर ही केन्द्रित करेंगे। कारण यह है कि आर्थिक पहलू (उत्पादन प्रक्रिया और वितरण) ही समाज की बुनियाद होती है जो राजनीति समेत अन्य प्रचलनों को तय या प्रभावित करती है। केजरीवाल का मुख्य गुण ईमानदारी बताया जाता है लेकिन यह कथित ईमानदारी किसके प्रति है? सही-ग़लत का फ़ैसला सिर्फ़ ईमानदारी से नहीं बल्कि इस बात से होगा कि यह ईमानदारी समाज के किन लोगों के हित में है। यहाँ हम इसी बात की पड़ताल करेंगे कि उनका आर्थिक एजेंडा समाज के किन लोगों के हित में है। केजरीवाल और 'आप' पार्टी के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझते हुए हम उनके केन्द्रीय नुक़्ते भ्रष्टाचार की चर्चा भी करेंगे।

केजरीवाल की आर्थिक नीति "पंजाबी ट्रिब्यून" में छपे उनके इंटरव्यू, दिल्ली के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़े के बाद कुछ टीवी चैनलों पर आये इंटरव्यू और भारतीय पूँजीपतियों के संगठन सी.आई.आई. में दिये गये भाषण से पता चलती है। 'ट्रिब्यून' अख़बार में छपी बातचीत में केजरीवाल कहते हैं, "हमें निजी व्यापार को बढ़ावा देना होगा।... सरकार का व्यापारिक क्षेत्र में कोई काम नहीं।... हम व्यापार से नियमों की बन्दिशें हटायेंगे।... हम व्यापार के लिए ज़रूरी सारी सहूलियतें मुहैया करायंगे।" (पंजाबी ट्रिब्यून, 10 फ़रवरी, 2014)। इसी तरह सी.एन.एन.-आई.बी.एन. चैनल पर आयी बातचीत में उन्होंने कहा, "हम ईमानदार कम्पनी लायेंगे, ईमानदारी से काम करो, जायज़ मुनाफ़ा कमाओ। हम तुम्हारे साथ हैं।" 17 फ़रवरी को पूँजीपतियों के राष्ट्रीय संगठन सी.आई.आई. में दिये गये भाषण में तो वह और भी खुलकर पूँजीपतियों के पक्ष में खड़े दिखायी दिये। यहाँ उन्होंने कहा, "आप देश के लिए धन-दौलत पैदा कर रहे हैं। आप देश के लिए रोज़गार पैदा कर रहे हैं।... हम आपके साथ हैं।... सरकार का काम व्यापार के लिए सुरक्षित माहौल देना है।... हम पूँजीवाद के ख़िलाफ़ नहीं, 'क्रोनी कैपिटलिज़्म' (भ्रष्ट पूँजीवाद) के ख़िलाफ़ हैं।... इंस्पेक्टर राज ख़त्म करना पड़ेगा। एक छोटा-सा इंस्पेक्टर पूँजीपति को डराकर चला जाता है। एक छोटी-सी दूकान पर भी 31 इंस्पेक्टर आते हैं।"

केजरीवाल के बयानों का असली मतलब समझने के लिए हमें समाज के विज्ञान, उत्पादन के विज्ञान, राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझना पड़ेगा। यहाँ हम इसकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे। अपनी बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति में मौजूद संसाधनों पर श्रम करके ज़रूरी चीज़ों का उत्पादन करता है। यही समाज की बुनियाद बनता है। श्रम करने के दौरान मनुष्य एक-दूसरे के साथ उत्पादन सम्बन्धों (या श्रम सम्बन्धों) में बँधते हैं। अगर सभी व्यक्ति श्रम करते हैं तो श्रम सम्बन्धों में बराबरी होगी। लेकिन अगर सिर्फ़ कुछ व्यक्ति श्रम करते हैं और अन्य कोई श्रम नहीं करते तो श्रम सम्बन्ध श्रम की लूट पर टिके होंगे। जो वर्ग श्रम नहीं करता वह ज़मीन और उत्पादन के अन्य सभी संसाधनों (जैसे कारख़ाने, खदानें आदि) पर अपना निजी मालिकाना क़ायम करता है। मेहनतकश वर्ग उत्पादन के साधनों से वंचित रहता है। इस तरह इतिहास में पहले वर्ग ग़ुलाम और ग़ुलाम-मालिकों के थे और आज ये वर्ग पूँजीपति और मज़दूर हैं। मुख्यत: पूँजीपति और मज़दूर वर्ग में बँटे इस सामाजिक ढाँचे को पूँजीवादी ढाँचा कहते हैं। पूँजीवाद में उत्पादन के साधन जैसे ज़मीन, फैक्ट्रियाँ, खदानें आदि पूँजीपति के कब्ज़े में होती हैं और मज़दूर उन पर अपने श्रम से उत्पादन करता है। निजी मालिकाने के कारण सारा उत्पादन पूँजीपति हड़प जाता है और बदले में मज़दूर को सिर्फ़ ज़िन्दा रहने लायक मज़दूरी मिलती है। मज़दूर के उत्पादन को पूँजीपति द्वारा हड़प लेना ही बुनियादी लूट है, यही बुनियादी भ्रष्टाचार है। मगर इस व्यवस्था में यह लूट पूरी तरह क़ानूनी मानी जाती है। इसी को केजरीवाल "ईमानदारी से जायज़ मुनाफ़ा कमाना" कहते हैं। वास्तव में पूँजीवाद अपनेआप में ही भ्रष्टाचार है।

अब जरा राज्य सत्ता को समझने की कोशिश करते हैं। सत्ता असल में समाज में मौजूद दो वर्गों के टकराव की ही उपज है। यह एक वर्ग की तरफ़ से दूसरे वर्ग का दमन करने और लूट के तन्त्र को सुरक्षित रखने का ही एक औज़ार है। सरकार, पुलिस, सेना, क़ानून, जेलें और अदालतें राज्य सत्ता का ही अंग हैं। राज्य सत्ता पर भी उसी वर्ग का नियन्त्रण होता है जो उत्पादन के संसाधनों पर काबिज़ है - यानी पूँजीपति वर्ग का। पूँजीवाद में सत्ता मुट्ठीभर पूँजीपति वर्ग की तरफ़ से विशाल संख्या वाले मज़दूर वर्ग को लूटने और दबाने का हथियार होती है। लेकिन यह सत्ता सिर्फ़ दमन के हथियारों से टिकी नहीं रह सकती। इसके लिए सत्ता को इस तरह पेश किया जाता है जैसे कि यह दोनों वर्गों के टकराव से ऊपर और निष्पक्ष हो। तरह-तरह के क़ानूनों, काग़ज़ी संविधान, संसद और न्यायपालिका आदि के ज़रिये जनतन्त्र का दिखावा खड़ा किया जाता है। लोगों को विश्वास दिलाया जाता है कि सरकार का जनता के द्वारा "चुनाव" हो रहा है। इस तरह राज्यसत्ता जनता को भ्रम में डालकर उनकी "सहमति" हासिल करके अपनेआप को क़ायम रखती है और इस तरह वर्गों के टकराव को शान्त करने की कोशिश करती है। इलेक्ट्रॉनिक और प्रिण्ट मीडिया और शिक्षा-संस्कृति आदि के ज़रिये शासक वर्ग अपने विचारों को जनता के दिलो-दिमाग़ में बैठाने में लगे रहते हैं। वास्तव में, राज्य सत्ता (या सरकार) कत्तई निष्पक्ष नहीं, बल्कि पक्षपाती होती है। सरकार असल में पूँजीपतियों की ही प्रबन्धक कमेटी होती है जो पूँजीपतियों के हितों के अनुसार क़ानून बनाती है, उनकी लूट को जायज़ ठहराती है और शोषित लोगों के आक्रोश से उसे सुरक्षित रखती है। अपने राज्य के प्रबन्ध को चलाने के लिए यह अलग-अलग प्रशासनिक ढाँचे खड़े करती है जिनको चलाने के लिए नौकरशाही की ज़रूरत पड़ती है।

उत्पादन की प्रक्रिया और राज्य सत्ता को समझने के बाद अब हम भ्रष्टाचार के मुद्दे को भी समझ सकते हैं जिसकी केजरीवाल हमेशा तोते की तरह रट लगाये रहते हैं। पूँजीपति (मालिक) की तरफ़ से मज़दूर द्वारा पैदा की गयी चीज़ों (दौलत) पर कब्ज़ा कर लेना बुनियादी भ्रष्टाचार है लेकिन इस पर तरह-तरह से पर्दे डाल दिये जाते हैं। सिर्फ़ नौकरशाही ढाँचे में होने वाले हेराफेरी को ही भ्रष्टाचार कह दिया जाता है। केजरीवाल (या अन्ना हजारे, रामदेव जैसा कोई और "समाज सुधारक") जब भ्रष्टाचार की बात करते हैं तो वह सिर्फ़ नौकरशाही की तरफ़ से किये जा रहे इस भ्रष्टाचार की ही बात करते हैं, बुनियादी भ्रष्टाचार की नहीं। नौकरशाही में हो रहा भ्रष्टाचार असल में पूँजीपति द्वारा की गयी लूट का उसके हिस्सेदारों, हिमायतियों में बाँटने का झगड़ा है। यह ठगों की तरफ़ से लूटे गये माल की आपसी बाँट का झगड़ा है। नौकरशाही एक ऐसी बुराई है जो पूँजीवादी व्यवस्था की मजबूरी है, इसको अपना प्रबन्ध चलाने के लिए इनको रिश्वत के रूप में मोटी तनख़्वाहें देनी पड़ती हैं। लेकिन यह नौकरशाही हर समय उनके इशारों पर नहीं चलती बल्कि अपने निजी स्वार्थ के मुताबिक़ भी चलती है, क्योंकि पूँजीवाद में निजी हित प्रधान होते हैं न कि समूह; मुनाफा प्रधान होता है न कि जनता की ज़रूरत। इसलिए नेताओं और अफ़सरों को जहाँ भी मौक़ा मिलता है, ये रिश्वत और कमीशन झपटने से नहीं रुकते। नौकरशाही के भ्रष्टाचार से जनता ही नहीं, ख़ुद पूँजीवादी सत्ता भी परेशान होती है, क्योंकि यह ढाँचे को उस तरह नहीं चलने देते जैसे वे चाहते हैं। उन्हें लूट के माल में से एक हिस्सा मंत्रियों-संत्रियों-अफ़सरों को देना पड़ता है। दूसरे, जनता का असन्तोष शान्त रखने के लिए यह व्यवस्था भीख के टुकड़ों के तौर पर जो कुछ "कल्याणकारी योजनाएँ" बनाती है उसका लाभ भी नेताशाही-नौकरशाही जनता तक पहुँचने ही नहीं देती। इससे पूरी व्यवस्था के प्रति जनता में आक्रोश और नफ़रत भड़कती है। इस लिए नौकरशाही पूँजीवाद के लिए अटल बुराई है और इसलिए नौकरशाही में भ्रष्टाचार भी अटल है, इसको तब तक ख़त्म नहीं किया जा सकता जबतक नौकरशाही रहेगी या अधिक सटीक शब्दों में कहा जाये, जब तक पूँजीवाद रहेगा। अगर पूँजीवादी व्यवस्था में इस बुराई (नौकरशाही के भ्रष्टाचार) से छुटकारा पाना सम्भव होता तो पूँजीवादी सत्ता केजरीवाल जैसे मदारियों और लोकपाल बिल जैसे ढकोसलों के बिना ही बहुत पहले ऐसा कर चुकी होती ।

असल में पूँजीवाद के बौद्धिक चाकर अक्सर ही इधर-उधर की चीज़ों को मुद्दा बनाकर सामाजिक समस्याओं और लूट के असली कारणों पर पर्दा डालने की कोशिश

(पेज 14 पर जारी)

लोकतन्त्र के बारे में नेता से मज़दूर की बातचीत

– नकछेदी लाल

लोकतन्त्र का हमारे लिए बस यही मतलब है
कि सुनते रहें आपके भाषण और लगाते रहें मतपत्र पर छापा।
फिर पाँच साल तक संसद में आप लगाते रहें लोट
ऊँघते रहें और छोड़ते रहें गैस
आपके कुनबे वाले करते रहें ऐश,
दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जाये आपकी दौलत
और आपका मोटापा।
इस लोकतन्त्र में कारख़ानों में राख हो जाती है
हम मजदूरों की जवानी
और दिप-दिप दमकता है मुफ़्तख़ोरों का बुढ़ापा।
आप तो हैं उन्हीं के टुकड़ख़ोर
जो हमारी हड्डियों का चूरा तक बनाकर
बेच देते हैं बाजारों में,
फिर करते हैं दान-धरम और लगाते हैं तिलक छापा।
आप मनाते हैं न जाने कितने तरह के जश्न
जब हमारी बस्तियों में होता है सन्नाटा और सियापा।
हमारी बदमतीज़ी के लिए आप कत्तई हमें माफ़ नहीं करेंगे
पर हम यह कहे बिना रोक नहीं पा रहे हैं अपने आपको
कि ये जो "दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र" है न महामहिम!
है ये अजब तमाशा और ग़ज़ब चूतियापा!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006